परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2015
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी–275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

विषय सूची

आलेख

सुनीता चुघ
नगरीय गरीब क्षेत्रों के विद्यालयों में नेतृत्वकारी चुनौतियां 1

राजेश प्रसाद सिंह
शिक्षा और आधुनिकता के संदर्भ में संस्कृत शिक्षण-अधिगम का प्रयोजन 23

वेटुकुरी पी.एस. राजू
श्रीलंका की स्कूली शिक्षा में बदलाव के रुझान 43

कौशल किशोर
आँगनवाड़ी व्यवस्था एवं पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में इसका योगदान 63

शोध टिप्पणी / संवाद

संगीता डे
किशोर बालिकाओं की विद्यालय में नियमित उपस्थिति पर स्वच्छता संसाधनों का प्रभाव 75

सुभाष सिंह
विद्यालयीय शिक्षा स्तर पर आवासीय एवं गैर आवासीय विद्यार्थियों के समायोजन का अध्ययन 83

आशा शर्मा और **सुशील कुमार अवस्थी**
अनुसंधान के गुणात्मक उन्नयन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिका 107

राम निवास
प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण 119

चिंतक और चिंतन

अजय कुमार सिंह एवं **विनोद कुमार सिंह**
पंडित मदन मोहन मालवीय का जीवन–दर्शन एवं मानव–निर्माण की शिक्षा 129

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

नगरीय गरीब क्षेत्रों के विद्यालयों में नेतृत्वकारी चुनौतियां

सुनीता चुघ*

प्रस्तावना

भारत के नगरीय स्कूल, ग्रामीण स्कूलों से अलग, कुछ अद्वितीय भौतिक और जनसांख्यिकीय विशेषताओं को दर्शाता है। ये स्कूल अक्सर गरीबी की उच्च एकाग्रता, अधिक सांस्कृतिक और भाषाई विविधता और प्रवासी आबादी की अधिक संख्या और छात्र गतिशीलता की उच्च दर को दर्शाते हैं। हालांकि, सामाजिक, आर्थिक विशेषताएं नगरीय स्कूल प्रणाली के लिए चुनौती नहीं है, परन्तु व्यापक स्थानिक, सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं को संबोधित करना स्कूल के लिए एक बड़ी चुनौती है। ऑरफील्ड (2005) के अनुसार अलगाव और गरीबी नगरीय शिक्षा प्रणाली में बड़े मुद्दे हैं। नगरीय शिक्षा प्रणाली न केवल छात्रों की जनसंख्या में विविधता दर्शाती है, बल्कि यहां छात्रों और शिक्षकों के बीच की सामाजिक खाई को भी दर्शाती है, क्योंकि अक्सर अध्यापक उस समुदाय से संबंध नहीं रखते जिनका संबंध छात्र से होता है। पहले से कहीं अधिक, स्कूल में दर्जनों जातीय, सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई पृष्ठभूमि के छात्र नामांकित है। प्रभावी एकीकरण के रास्ते ढूंढने और सभी छात्रों की आवश्यकता को पूरा करने हेतु स्कूल में बदलाव के लिए विविधता स्कूल प्रमुखों के समकक्ष चुनौती बनकर उभरी है। स्कूल प्रमुख समावेशी और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील स्कूलों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्कूल प्रमुखों और उनके दल के ठोस प्रयास बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु स्कूल में बदलाव और सुधार लाते हैं। सभी बच्चे अधिगम के समान अवसर प्राप्त कर सकें, इसके लिए अभिभावकों और समुदाय से निकट संबंध स्थापित करने के लिए तथा विविध छात्रों के साथ कार्य करने हेतु स्कूल प्रमुखों के पास ठोस पारस्परिक कौशल होना आवश्यक है। इसी संदर्भ में, यह आलेख नगरीय स्कूलों और उसके छात्रों की विशेषताओं को समझने का एक प्रयास है। यह इस

*सह-प्रोफेसर, न्यूपा, नई दिल्ली-110016

पर भी ध्यान केंद्रित करता है कि स्कूल इस विविध जनसंख्या के साथ कैसे व्यवहार करते हैं। कैसे स्कूल प्रमुख समावेशी स्कूल बनाने और अधिगम में सुधार करते हैं? यह आलेख इस बात की भी पड़ताल करता है कि नगरीय स्कूलों में बदलाव हेतु स्कूल प्रमुखों के पास कौन सी विशिष्ट योग्यता होनी चाहिए। यह आलेख अंतरराष्ट्रीय अनुभवों के साथ-साथ भारतीय संदर्भ पर केंद्रित है।

नगरीय स्कूलों में स्कूल प्रमुखों की महत्वपूर्ण भूमिका

विद्वानों का मानना है कि स्कूल प्रमुख स्कूल की रीढ़ की हड्डी हैं और वह स्कूल में मुख्य भूमिका निभाते हैं। सर्जियोवानी (1995) लिखते हैं कि ''स्कूल में सुधार और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए उनकी स्थिति सर्वोच्च है'' (पृ. 83)। बेक तथा मर्फी (1993) का मानना है कि स्कूल का प्रमुख – जिसे मध्य प्रबंधक या स्थल प्रशासक का भी नाम दिया गया है, स्कूल में प्रभावी या अप्रभावी शिक्षा, कम या अधिक मनोबल, सकारात्मक तथा नकारात्मक परिवेश, कार्मिकों की संतुष्टि एवं असंतुष्टि, छात्रों की उपलब्धि या अनुपलब्धि अभिभावकों और जनता के सकारात्मक या नकारात्मक सहयोग, प्रभावी एवं अप्रभावी प्रबंधन तथा नेतृत्व के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी है। (पृ. 164)।

प्रभावी स्कूलों के गुणात्मक अध्ययन स्पष्ट रूप से स्कूल की गुणवत्ता का संबंध स्कूल के नेतृत्वकारी भूमिका के महत्व के साथ स्थापित करते हैं तथा किस प्रकार वे अपनी बहुमुखी भूमिका का प्रदर्शन करते हैं। वे यथास्थिति में विश्वास करते हैं या वे एक स्पष्ट दृष्टि के साथ स्कूल का नेतृत्व करते हैं। वे जोखिम लेते हुए समस्याओं पर गंभीरता दिखाते हुए अपने दल के सहयोग के साथ समाधान खोजने की कोशिश करते हैं। हॉल (2002) का मानना है कि स्कूल प्रमुख स्कूल सुधार, उपलब्धि प्राप्ति के निर्धारक तथा स्कूल समुदाय के नेता हैं। स्कूल प्रमुख स्कूल निर्माण के लिए नेतृत्वकारी भूमिका, स्कूल अनुदेशनात्मक कार्यक्रम तथा नीतियों के लिए नेतृत्व तथा स्कूल कर्मिकों एवं स्वयं के लिए व्यावसायिक विकास को बनाए रखना और सभी छात्रों के लिए व्यक्तिगत स्कूल परिवेश को बढ़ावा देते हैं। (तिरोजी, 2001)। संक्षेप में, स्कूल प्रमुख परिवर्तन के लिए अध्यापकों के बीच दशाओं का निर्धारण करते हैं जो कि स्कूल सुधार का बुनियादी घटक है (जेपेदा, 2007)। अनुसंधानकर्त्ताओं का मानना है कि स्कूल प्रमुख विशेषत: प्राचार्य, छात्र अधिगम प्राप्ति पर अप्रत्यक्ष रूप से मापनीय सकारात्मक

प्रभाव डाल सकते हैं। (लीथवुड तथा रीहल, 2003)। इसके अलावा इस बात का भी प्रमाण है कि उच्च गुणवत्तायुक्त नेतृत्व उन स्कूलों में बहुत महत्वपूर्ण है जहाँ कम सामाजिक-आर्थिक स्तर के छात्र पढ़ते हैं, जो अक्सर शैक्षणिक रूप से सफल नहीं हो पाते। (स्कीरेन्स तथा बोस्कर, 1997)। समस्त रूप से, छात्र अधिगम पर नेतृत्वकारी प्रभाव छात्र परीक्षण में कुल भिन्नता के पांच प्रतिशत को प्रभावित किया। हालांकि यह कम आंकड़ा सभी विद्यालयों में 25 प्रतिशत चर को दर्शाता है जिनके उपर नीति-निर्माताओं का नियंत्रण है (हालिंगर तथा हेक, 1996), इससे नेतृत्व एकल प्रभाव के चर के रूप में नज़र आता है। लुईस तथा अन्य (2010) ने पहले के निष्कर्षों की भी पुष्टि करी है और माना है कि नेतृत्व कक्षा-शिक्षण के बाद स्कूल में सीखने का दूसरा सबसे बड़ा कारक है। छात्रों के अधिगम स्तर पर नेतृत्वकारी प्रभाव इसलिए पड़ता है क्योंकि नेतृत्व व्यावसायिक समुदाय को मजबूत करती है, और बदले में ऐसी अनुदेशनात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करती हैं जो छात्र अधिगम से जुड़ी होती हैं। (वाहलस्ट्रोम, लुईस, लीथवुड तथा एंडरसन 2010, पृ. 10) छात्रों की उपलब्धि पर नेतृत्व का प्रभाव में एक नये सिरे से रुचि असर (ए.एस.ई.आर.) रिपोर्ट और एन.सी.ई.आर.टी. बेसलाईन उपलब्धि सर्वेक्षण के आंकड़ों से जबसे पता चला है कि छात्रों का अधिगम स्तर बहुत कम है और अपने ग्रेड के अनुसार अपेक्षित योग्यता उनके पास नहीं है, तबसे हुई है इसके अलावा हाल ही के वर्षों में, किसी भी संस्था की प्रभावशीलता में सुधार हेतु सबसे बेहतर तरीका स्कूल स्तर पर विकेंद्रीकरण और शक्तियों का हस्तांतरण माना गया है। भारत में स्कूल शिक्षा व्यवस्था और व्यापक राजनीति में हो रहे परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने हेतु विद्यालय प्रमुखों को अधिक सक्रिय भूमिका निभाने की आवश्यकता है। इसमें सम्मिलित है सभी नामांकित बच्चों को स्कूल में बनाए रखना, अधिगम स्तर को बढ़ाना, स्कूल में शिक्षकों की उपस्थिति सुनिश्चित करना इत्यादि। इसके अलावा स्कूल प्रमुखों को अब कई सहायक गतिविधियों जैसे मध्याह्न भोजन योजना, संवितरण अधिकार, छात्रवृत्ति इत्यादि को भी प्रबंधित करना होगा। उनकी भूमिका केवल स्कूल की चारदीवारी के भीतर नहीं रहेगी परन्तु उन्हें समुदाय सदस्यों, विद्यालय स्कूल प्रबंधन समिति तथा अन्य हितधारकों के साथ मिलकर स्कूल में सुधार हेतु भागीदार बनाना होगा। यह व्यापक रूप से माना जाने लगा है कि स्कूल प्रमुख स्कूल व्यवस्था में परिवर्तन और रूपांतरण ला सकता है तथा सब बच्चे पढ़ सकें, इस प्रकार का परिवेश सृजित कर सकता है। नगरीय गरीब इलाकों में रहने वाले वंचित बच्चों की आवश्यकता को पूरी

करने में स्कूल प्रमुखों की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। मूल प्रश्न यह है कि अभिभावकों और बच्चों की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए स्कूल प्रमुखों के पास आवश्यक योग्यता, ज्ञान, दृष्टिकोण और कौशल है। स्थिति बहुत उत्साहजनक नहीं है। स्कूलों के प्रमुखों को प्रशासन और प्रबंधन की गतिविधियों में शामिल किया गया है और इससे परे वे अपनी भूमिका की कल्पना नहीं करते हैं। स्कूल नेतृत्व हेतु स्कूल प्रमुख आवश्यक कौशल और ज्ञान से लैस नहीं हैं। अधिकांश स्कूल प्रमुखों ने यह पद वरिष्ठता के आधार पर प्राप्त किया है और कुछ खुले चयन के माध्यम से नियुक्त हुए है। स्कूल प्रमुखों को सेवा पूर्व या सेवा के दौरान नेतृत्व पर उपयुक्त क्षमता निर्माण कार्यक्रम प्रदान नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप, अधिकांश स्कूल प्रमुख अपना उत्तरदायित्व प्रथानुसार या कभी-कभी उत्साह दिखाकर पूर्ण कर लेते हैं। अगर हम स्कूल व्यवस्था को पुनर्जीवित करना चाहते हैं तो छात्रों की आवश्यकता के अनुसार विविध स्कूल योजनाओं को स्कूल प्रमुख द्वारा तैयार करना होगा। बच्चों की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए नगरीय स्कूलों में इसकी और अधिक आवश्यकता है।

नगरीय भारत पर तथ्य और आंकड़े

भारतीय नगरीय दृश्य में विविध आबादी और आकार के साथ शहरों के अस्तित्व की एक विशेषता है। यह दुनिया में सबसे बड़ी व्यवस्था है, जहां ग्रामीण इलाकों जैसे बड़ी संख्या में छोटे शहरों से लेकर बड़े महानगर हैं। भारत में 2011 में 1210.2 मिलियन जनसंख्या,

चित्र 1: भारत में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि (1901-2011)

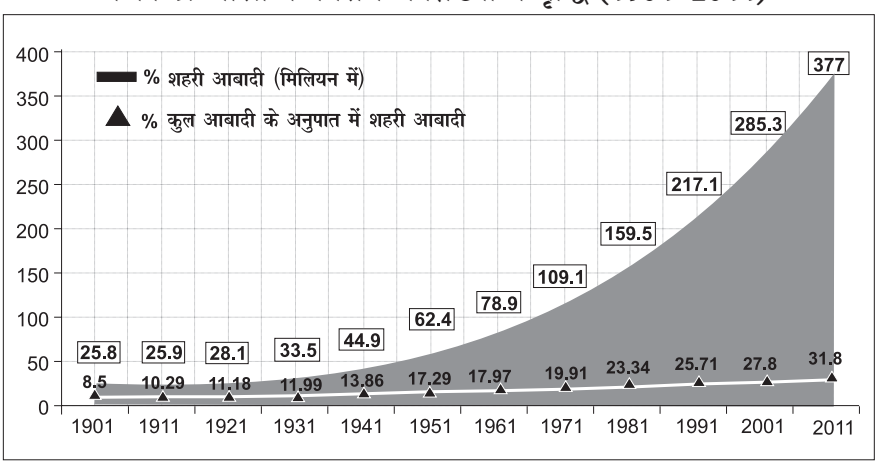

स्रोत: भारत की जनगणना, रजिस्ट्रार जनरल, (अनुबंध-I, तालिका-1) नई दिल्ली

में से 377 मिलियन (31.2%) नगरीय क्षेत्रों में रह रही थी। 2001–2011 से नगरीय क्षेत्रों में 90.47 मिलियन तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 91 मिलियन आबादी की बढ़ोतरी हुई थी। दशक 2001–11 में ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या का वृद्धि प्रतिशत क्रमशः 12.2 और 31.8 प्रतिशत रहा। भारत में एक मिलयन से अधिक की आबादी के साथ 53 शहर/नगरीय क्षेत्र हैं। 1901–2011 से आंकड़े नगरीय आबादी और नगरीय क्षेत्र की संख्या में वृद्धि को दर्शाते हैं।

चित्र 2: भारत में नगरीय समुदाय में वृद्धि (1901–2011)

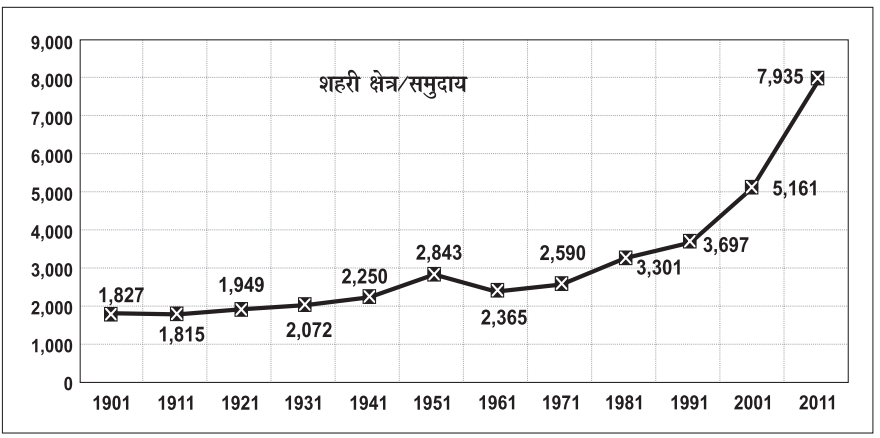

स्रोत: भारत की जनगणना, रजिस्ट्रार जनरल, नई दिल्ली

वैश्वीकरण के तहत उभरता नगरीय परिदृश्य कई विरोधाभासों और तनाव के साथ परिलक्षित होता है। नगरीय क्षेत्र, विशेष रूप से महानगर या बड़े शहर गतिशीलता, विशाल अवसरों, और लोकप्रिय कल्पना में आर्थिक विकास के इंजन के साथ जुड़े दिखाई देते हैं। यह धारणा हालांकि, वास्तविकता के परे दिखाई देती है। ऊंची इमारतों के अलावा, अपर्याप्त बुनियादी सुविधाओं के साथ छोटी झोपड़ियां शहरों में स्थित है। गरीब, मलिन बस्तियों के रूप में जाने वाली अनौपचारिक बस्तियों में केंद्रित रहते हैं। मलिन बस्तियों की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से कुछ हैं, घोर गरीबी, जोखिम और नाजुक हाला में रहने की स्थिति, जीवन या संपत्ति के लिए कोई सुरक्षा नहीं, और संवैधानिक व्यवस्थाएं और कानूनी प्रणाली से बाहर मानव अधिकारों और हकों से वंचित। यह विवरण कुछ हद तक अपमानजनक प्रतीत होता है, वास्तविकता शायद इससे भी ज्यादा निराशाजनक है। मलिन बस्तियों और निवासियों की संख्या में वृद्धि और उनके रहने की खराब स्थिति को देखते हुए नीति निर्माताओं, अनुसंधानकर्ताओं,

कार्यकर्ताओं का ध्यान उनकी जिंदगी में आ रही असुविधा और नगरीय वंचित बच्चों विशेषकर उनकी शिक्षा के संबंध में आ रही बाधाओं पर अध्ययन करने की ओर आकर्षित हुआ है। नगरीय शिक्षा प्रणाली को काफी बड़े राष्ट्रीय एजेंडे पर रखा जा रहा है (तालिका–1)

तालिका–1: नगरीय शिक्षा प्रणाली 2013–14 पर डाईस आँकड़ा

प्राथमिक / उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	206,799
उच्च प्राथमिक विद्यालयों और प्राथमिक का अनुपात	1:1 1 43
एकल शिक्षक स्कूलों का प्रतिशत (प्राथमिक)	6.52%
एकल शिक्षक स्कूलों का प्रतिशत (उच्च प्राथमिक)	6.75%
नियमित प्रधान शिक्षक के साथ स्कूलों का % और संख्या	110,764 (53.56%)
30 से ऊपर पीटीआर के साथ स्कूलों का % (प्राथमिक)	29.57
35 के ऊपर पीटीआर के साथ स्कूलों का % (उच्च प्राथमिक)	12.64

स्रोत: भारत में नगरीय प्राथमिक शिक्षा (2013–14), न्यूपा

नगरीय स्कूल और उसके छात्र जनसंख्या के लक्षण

विभिन्न राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों के लोग बेहतर रोजगार के अवसर और जीवन स्तर की तलाश में विस्थापित के रूप में नगरीय क्षेत्रों में विविधता और असमानता के प्रतीक रहते हैं। प्रवासियों की बढ़ी संख्या, भाषाई, जातीय और सांस्कृतिक विविधता लाती है। पहले से कहीं अधिक, स्कूलों में विविध सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई पृष्ठभूमि के दर्जनों छात्र हैं। मुख्य रूप से घरेलू नौकरों, सड़क पर काम कर रहे बच्चों, मलिन बस्तियों और पुनर्वास कालोनियों के बच्चों, बाल श्रमिकों/मजदूरों, सेक्स वर्करों, प्रवासी श्रमिकों के बच्चों, रिमांड होम, किशोर कारावास और कानून के साथ संघर्ष में नगरीय वंचित समूहों के बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएं; अलग–अलग और जटिल हैं। निम्नानुसार वंचित बच्चों के लिए भारतीय नगरीय स्कूलों की मुख्य विशेषताओं को संक्षेपित किया जा सकता है।

- विशाल सांस्कृतिक–भाषाई विविधता
- उच्च अप्रवासी / शरणार्थी आबादी
- छात्रों की उच्च जनसंख्या जिनकी पहली भाषा स्कूल भाषा से अलग है
- उच्च गरीबी

- सामाजिक समस्याओं की विविधता (उदाहरण के लिए, ड्रग्स, शराब, बेकार परिवार)
- हिंसा – परिवार में या पड़ोस में
- भावनात्मक ध्यान को तरसे हुए बच्चे
- तनाव के उच्च स्तर
- छात्रों की उच्च त्याग की दर
- बच्चों की अनियमित उपस्थिति
- बच्चों की कम उपलब्धि स्तर
- स्कूल के कार्यक्रमों में माता–पिता की भागीदारी का अभाव
- अपर्याप्त ढांचा, स्कूलों में सहायक सुविधाएँ
- कम प्रेरणा और शिक्षकों का उत्साह

एक ही भौगोलिक स्थिति के भीतर स्थित कम आय वाले, नगरीय, बहुसांस्कृतिक स्कूलों में शिक्षण माता पिता के अधिक समर्थन और अधिक सजातीय रूप में अच्छी तरह से स्थिर छात्र आबादी के साथ, निजी स्कूलों में अध्यापन से अलग है। प्रमुख महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक है घर की भाषा का स्कूल भाषा से अलग होना। अलग माध्यम के कारण बच्चे न तो समझ पाते हैं और न ही वे बातचीत कर सकते हैं, यह स्कूल प्रमुखों के लिए चिंता का विषय है। इन बच्चों का कक्षा में समावेशन एक बड़ी चुनौती है। गरीब आबादी के लिए स्कूलों में प्रतिबद्ध और समर्पित और गुणवत्तायुक्त शिक्षकों को खोजना वास्तव में विशेष रूप से नि: शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 के अधिकार के लागू होने के बाद एक प्रमुख राष्ट्रीय चिन्ता का विषय है।

विविधता के संबंध में नेतृत्व पर प्रवचन

विविधता के संबंध में नेतृत्व पर अलग विवेचन विशेष रूप से वंचित समूहों के दो प्रमुख दृष्टिकोण के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है। एक तरफ, छात्रों के सीखने के मामले में पहचानने और विविधता का उपयोग कर मूल्य कहते हैं कि व्यक्तिगत क्षमता अधिकतम प्रबंध विविधता और बहुसंस्कृतिवाद के प्रवचन पर आधारित है। (ब्लैकमोर 2006, गुटंर 2006) है। इसमें ध्यान मतभेद मिटाने और विभिन्न धार्मिक समूहों और विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के त्योहारों के लिए विविधता की प्रथाओं को समझने पर किया जाता है। संरचनात्मक असमानता और नुकसान मान्यता प्राप्त नहीं कर पाते हैं

और सामाजिक न्याय, समानता और देखभाल की चिंताओं को एक तरफ कर दिया जाता है (गेविरटज 2002)। एक अन्य प्रवचन सामाजिक न्याय और समानता को शैक्षिक नेतृत्व (बोगटोक 2002) के केन्द्र में रखता है। सामाजिक न्याय नेतृत्व स्कूल के नेताओं के नेतृत्व और दृष्टिकोण (थियोहारिज, 2007) के लिए सामाजिक समावेश और बहुसंस्कृतिवाद (वर्ग, लैंगिक, विकलांगता और अन्य ऐतिहासिक दृष्टि से हाशिए की स्थिति) को मुद्दा बनाता है। इस दृष्टिकोण के बारे में सवाल उठाये जाते हैं कि कैसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक लाभ और हानि जो समाज में मौजूद हैं और स्कूल के संगठनात्मक ढांचे और संस्कृतियों में पुनः प्रकट होते हैं। यह दृष्टिकोण गरीब तबके के बच्चों को नुकसान कर रहा है जहाँ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मतभेदों के रूप में स्कूल को देखा जाता है। भारत में विशेष रूप से नगरीय क्षेत्रों में स्कूलों के विभिन्न प्रकार और शिक्षा प्रणाली में विभिन्नता और असमानता को बनाए रखने का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई देता है। सामाजिक न्याय और महत्वपूर्ण बहुसांस्कृतिक दृष्टिकोण विभिन्नता को समझते हैं और इसे आत्मसात करने के बजाय इस मतभेद का सम्मान करते हैं और अधिक संसाधनों (गेविर्टज 1998, 2007 थियोहारी) के समान पुनर्वितरण के लिये संघर्ष करते हैं। इस संदर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका प्रतीकात्मक रूप से अलग संस्कृति, भाषा और धर्म वाले विभिन्न देशों से अप्रवासियों के साथ आने वाले लोगों के लिए एक विशाल '*पिघलता पॉट*' माना जाता है। हालांकि 1960 के दशक में यह महसूस किया गया कि हर समुदाय की अपनी अलग पहचान है इसलिए स्कूल ने सांस्कृतिक विविधता को पहचानना शुरू किया, जो विविधता कक्षा में समृद्धि लाई। स्कूल नेतृत्व ने 'सांस्कृतिक भेदभाव' की तुलना में 'सांस्कृतिक अंतर' को पहचान समृद्धि को महत्व देना शुरू किया। सांस्कृतिक भेदभाव से यह धारणा है कि (बैंकस 1994) सड़क, स्लम क्षेत्रों में रहने वाले लोग अपनी संस्कृति के कारण स्कूल में पिछड़ रहे हैं।

भारतीय संदर्भ में शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक न्याय और समानता लाने के लिए आम स्कूल प्रणाली शुरु की गई। आम स्कूल प्रणाली की मूलतः शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा वकालत की गई थी। डा. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में, इसे बाद में कोठारी आयोग के रूप में कहा जाने लगा। एनपीई, 1968 ने पड़ोस के बच्चों को स्कूल में स्वीकार करने के लिए समाज के सभी वर्गों को आम स्कूल प्रणाली में लाने के लिए कोठारी आयोग की इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया। शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति, 1986 ने दृढ़ संकल्प करवाया कि एक स्तर पर, चाहे वह किसी जाति, धर्म, स्थान, या लिंग से हों, सभी छात्रों, को, तुलनीय गुणवत्ता की शिक्षा के उपयोग हेतु आम स्कूल

प्रणाली पर प्रभावी उपाय उठाने हैं। लेकिन आम स्कूल प्रणाली अभी भी एक अवधारणा बनी जो 1960 में कोठारी आयोग द्वारा रखी गयी थी, शैक्षिक असमानताओं को आगे आम स्कूल प्रणाली में लागू करने की विफलता बलवती होती गई। स्कूल प्रणाली वास्तव में स्कूलों के विभिन्न प्रकार में छात्र रचना के माध्यम से देखा जा सकता है जो अधिक वर्ग आधारित बन गया है जो उच्च मध्यम और उच्च वर्ग के बच्चों को निजी स्कूल में भाग लेने और नगरीय गरीबों के वंचित बच्चों को सरकारी स्कूल में भाग लेने पर बल देता है। सरकार ने असमानताओं को संबोधित करने के लिए एक और कदम उठाया और निजी स्कूलों में वंचित बच्चों के लिए 25% सीटें आरक्षित करने के लिए अनिवार्य कर दिया गया है। इस संदर्भ में प्रमुख मुद्दा यह है कि क्या स्कूल प्रमुखों को इस विविध समूह के साथ निपटने के लिए उन्मुख किया गया है? वे अपने स्कूलों को समावेशी बनाने के लिए तैयार हैं? दुर्भाग्य से नहीं!

नगरीय वंचित स्कूल प्रमुखों के लिए वांछित योग्यता

समकालिक शिक्षाविदों का मानना है कि सबसे अनुभवी और सक्षम प्रधान शिक्षक के लिए एक नगरीय सरकारी स्कूल प्रमुख बनना बहुत मुश्किल है। अक्सर शैक्षिक वास्तविकताएं, गरीबी और मानव दुख के नकारात्मक प्रभाव कई शिक्षकों के लिए नकारात्मक हो सकती है और वे बच्चों की सांस्कृतिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, माता पिता के समर्थन की कमी, छात्रों की विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, छात्रों के कम अधिगम स्तर के कारण इन स्कूलों को पसंद नहीं करते। गरीबी और विविधता एकीकरण और सभी बच्चों को शामिल किए जाने के लिए प्रभावी तरीके खोजने के लिए शिक्षक और स्कूल प्रमुखों के लिए एक चुनौती प्रस्तुत करता है। सभी छात्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिए नवीन और महत्वपूर्ण विचारकों की जरूरत है। उन्हें बहुसांस्कृतिक दृष्टिकोण और इतिहास को एकीकृत करने वाला सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील पाठ्यक्रम विकसित करना चाहिए और सभी छात्रों को सीखने के लिए आवश्यक योग्यता, ज्ञान और कौशल के साथ शिक्षण रणनीतियों को लागू करना चाहिए।

नगरीय स्कूलों में छात्रों की विशिष्ट परिस्थितियों पर विचार करते हुए राइट (1981) के अनुसार वास्तव में बच्चों और युवाओं का सम्मान करने वाले समर्पित और प्रेरित शिक्षकों की जरूरत है, जो कि इन बच्चों के घरों और संस्कृति को समझे। हेबरमैन (1992) के अनुसार कम आय, नगरीय, बहुसांस्कृतिक स्कूलों में सफल शिक्षण एक अलग तरह का शिक्षण है। उन्होंने गरीबी से त्रस्त नगरीय स्कूल बच्चों के

लिए शिक्षकों और प्रधान शिक्षकों की भर्ती में प्रशिक्षण की तुलना में अधिक चरित्र दिखाने का प्रस्ताव रखा। कम आय वाले नगरीय स्कूलों में विविध छात्रों के संबंधों के सम्मान के रूप में स्कूल प्रमुखों में गुणों के होने की जरूरत है, प्रतिबद्धता स्वीकार करने और कम जोखिम वाले छात्रों के लिए शामिल किए जाने की प्रतिबद्धता, समर्थन एवं जवाबदेही होनी चाहिए।

(1988) मायेराफ वंचित छात्रों को ऐसे शिक्षक चाहिए जो उन्हें प्रोत्साहित कर सकें; जो लोगों के साथ तालमेल रखते हैं, जो उन्हें प्रेरित करते हुए सहायक परिवेश के साथ उनके मनोबल और आत्मविश्वास बढाये।

लेखक अनुसार इन शिक्षकों को जरूरत है, कि आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम को संशोधित करने, छात्रों के कौशल और उनके जीवन की समस्याओं के बारे में प्रधान शिक्षकों और अन्य शिक्षकों को अभिविन्यासित करने, माता-पिता के साथ संवाद करने में सक्षम होने की जरूरत है, तथा बच्चों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए।

एक महत्वपूर्ण मुद्दा नगरीय वंचित के विशिष्ट परिवेश और सामाजिक-आर्थिक शैक्षिक समस्याओं के प्रति शिक्षकों के बीच जागरूकता और संवेदनशीलता पैदा करने की है। सवाल यह है कि किस प्रकार का अभिविन्यास इन स्कूल प्रमुखों को दिया जाये कि वे स्कूल में इन बच्चों के लिए एक दोस्ताना, हर्षित और अनुकूल वातावरण तैयार कर सकें। कैसे वे स्कूलों को सामाजिक और आर्थिक खाई बनाने वाली संस्था न बनाए, बल्कि एक समर्थकारी माहौल वहां बना पाएं। स्कूल प्रमुख शिक्षकों को विभिन्न शिक्षण विधियों को अपनाने की जरूरत पर बल दें क्योंकि बच्चों में अलग अनुभूति और विशिष्ट अधिगम स्तर होता है।

अनुभूति और सीखने की शैली: अनुभूति की विविधता और सीखने की शैलियाँ बच्चों के विविध समूह के साथ काम करते हुए लागू की जानी चाहिए। शिक्षकों को समझना चाहिए कि जाति, लिंग या धर्म के बावजूद सभी बच्चों का विकास और शिक्षण शैली एक जैसी नहीं होती, उनकी शैली के साथ संगत नहीं होने वाले बच्चे उनकी विभिन्न शिक्षण शैली होती है। शिक्षकों को शिक्षण शैलियों की विविध कोशिश करनी चाहिए। कक्षा में प्रतीकात्मक पाठ्यक्रम के रूप में कक्षा विधि में सांस्कृतिक विविधता को समायोजित करने के लिए, सबसे अधिक, बुलेटिन बोर्ड सजावट, लक्षण, बैनर, या पोस्टर के रूप में देखा जाता है[1]।

[1] यह भाग पहले प्रकाशित कार्य से लिया गया है, चुघ (2012)

शिक्षक विविधताओं को दर्शाने के लिए बुलेटिन बोर्ड का उपयोग कर सकते हैं। शिक्षक अपनी कक्षाओं में क्षेत्रीय समूहों की आयु, लिंग, समय, स्थान, सामाजिक वर्ग की विविधताओं को दर्शायें। कई छात्रों के लिए, दुर्भाग्य से, टेलीविजन ज्ञान का एक शक्तिशाली और विन्नवसनीय स्रोत हो सकता है। स्कूल के प्रमुखों को मीडिया में जाति समूहों का गलत चित्रण की व्याख्या को स्पष्ट करना चाहिए। प्रधान शिक्षकों को विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग करने के लिए शिक्षकों को स्वतंत्रता देनी चाहिए जिससे कि सभी बच्चे सीख सकें।

छात्रों की भावनात्मक और शैक्षणिक जरूरत: सबसे बड़ी चुनौती है वंचित समूहों के छात्रों की मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने की। ज्यादातर बच्चे गरीबी से त्रस्त परिवारों से हैं, उनके पास उचित आश्रय नहीं है। बच्चों की सीखने की कठिनाइयों की निगरानी और सीखने के लिए तैयार करने हेतु उन पर भरोसा करने के लिए बच्चों के साथ कड़ी मेहनत की जरूरत है क्योंकि घर पर उनके पास अनुकूल शैक्षिक वातावरण नहीं है।

भाषाई और सांस्कृतिक विविधता: राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005 एनसीएफ) स्पष्ट रूप से प्राथमिक स्तर पर बच्चे की मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए बल देती है। दुनियाभर में पर्याप्त साक्ष्य हैं कि अपनी पहली भाषा में अपनी शिक्षा शुरू करने में बच्चों को बेहतर जानने के लिए मिलता है। स्कूल की शुरुआत में पढ़ने और लेखन कौशल हासिल करना बच्चे को एक परिचित भाषा में सबसे अच्छा किया जाता है। पांच राज्यों में से और दस अलग अलग भाषाओं के बच्चों को एक साथ अध्ययन, कराने वाले स्कूल शहरों में हैं। इसलिए एक और बड़ी चुनौती भाषा और छात्रों की सांस्कृतिक विविधता के साथ काम कर रहे शिक्षकों को तैयार करने की है। शिक्षकों अगर बच्चों को समझ नहीं सकते, तो वे उन्हें नहीं सिखा सकते हैं। उन्हें विभिन्न भाषा सीखने के लिए तैयार करने की जरूरत है। एक दूसरी भाषा सीखने या जानने के लिए उन्हें शैक्षिक फायदा मिलना चाहिए। विभिन्न बोलियों के लिए उन्हें अपना विकास करने की जरूरत है। विद्यालय प्रमुख व्यावसायिक विकास के लिए स्टाफ के सदस्यों के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने चाहिए हैं और उन्हें सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था करनी चाहिए।

अपनी परिचित संस्कृति और भाषा से दूर न रखते हुए बहु संस्कृति, बहु भाषा और विविध धर्मों वाले बच्चों के संदर्भ में शिक्षकों को स्वचालित पाठ्यक्रम से हटकर, बच्चों

को उनके दैनिक जीवन से संबंधित पाठ्यक्रम सीखाने की ज़रूरत है। डेवी जैसे विद्वान का कहना है कि शिक्षक प्रत्येक छात्र के बीच अद्वितीय मतभेद को ध्यान में रखते हुए पाठ सिखाये। एक मानक पाठ्यक्रम की स्थापना के अनुसार शैक्षणिक तरीकों का उपयोग भी प्रत्येक छात्र के अनुभव को एक अलग गुणवत्ता देगा। इस प्रकार, शिक्षण और पाठ्यक्रम व्यक्तिगत भेदभाव को पूरा करते हुए तैयार किया जाना चाहिए। पियाजेट (1971) ने भी माना कि प्रतिबंध के बिना और पर्याप्त समय के साथ, सक्रिय रूप से और स्वतंत्र रूप से, परीक्षण और त्रुटि की एक प्रक्रिया के माध्यम से बच्चों को सीखना होगा।

प्रशासन को भी स्कूलों में शिक्षकों की तैनाती के साथ-साथ भाषा, बोली, रीति-रिवाज़ की विविधता को ध्यान में रखना चाहिए। स्कूल में छात्रों की संरचना के बारे में आकलन किए जाने की जरूरत है। उदाहरणत: विद्यालय बंगाली बोलने वाले छात्रों के साथ एक या दो बंगाली शिक्षकों की भर्ती करें। शिक्षक उपलब्ध नहीं है, तो स्कूल प्रमुख लघु अवधि के लिए समुदाय और माता-पिता से उस भाषा को बोलने वालों का पता लगा सकता है।

पाठ्यक्रम : जीवन अनुभव से संबंधित: कुछ विद्वान यंग (1971), बौरदिए (1977) और पाउलो फ्रेरे (1985), शक्ति और ज्ञान संचारण के सामाजिक और राजनीतिक साधन के रूप में पाठ्यक्रम की भूमिका को देखते हैं। वे मूल रूप से मौजूदा शिक्षा प्रणाली को गरीबों के हित में नहीं मानते उनके अनुसार गरीब और वंचित को उन्हें अपने अनुभव का विश्लेषण कराने में शिक्षा को सक्षम होना चाहिए और इस प्रकार सामाजिक समानता और न्याय की बहाली में मदद मिलेगी। पाउलो फ्रेरे समस्या का हल करने या जाग्रत करने वाली शिक्षा के साथ अत्याचार और अत्याचार सहने वालों के संबंधों में सुध ाार लाना चाहते हैं। कथित रूप से, इन विद्वानों के अनुसार- सामाजिक परितर्वन को बढ़ावा देने वाली, महत्वपूर्ण विश्लेषण को बढ़ावा देने वाला पाठ्यक्रम और शिक्षण-विधि ा, चिंतनशील सोच और स्वयं के अधिगम अनुभवों की रूपरेखा में शिक्षार्थियों की सक्रिय भागीदारी हो प्रोत्साहित करने वाली शिक्षा गुणवत्तायुक्त शिक्षा कहलाती है।

हमारे देश में महात्मा गांधी ने विविधता और असमानताओं पर विचार करते समय आत्मनिर्भरता, प्रासंगिकता, इक्विटी और कौशल विकास पर जोर देने के साथ नई और वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली का प्रस्ताव रखा। स्थानीय रूपरेखा, निर्माण और शिक्षार्थियों की जरूरतों के अनुसार पाठ्यक्रम सामग्री, शिक्षण और मूल्यांकन तैयार किया जाना चाहिए। गाँधीजी के अनुसार सभी शिक्षार्थियों के पास पूर्व ज्ञान का समृद्ध स्त्रोत, जो

अनुभव से इकट्ठा होता है को शिक्षकों द्वारा उनमें से बाहर निकालना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) भी शिक्षार्थियों को सक्रिय रूप से अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर मौजूदा विचारों के लिए नए विचारों को जोड़ने के द्वारा अपने स्वयं के ज्ञान हेतु रचनावादी दृष्टिकोण पर बल देती है। रचनावाद इस प्रकार शिक्षार्थी के सक्रिय रूप से सीखने के लिए प्रशिक्षक के साथ सम्मिलित होते हैं और जहां शिक्षार्थी एक निष्क्रिय और ग्रहणशील भूमिका निभाता है, पिछले शिक्षण के विपरीत इसमें सीखने की प्रक्रिया में शामिल होने के महत्व पर जोर दिया जाता है। उदाहरण के लिए एक कहानी पढ़ने के बाद शिक्षक रचनात्मक बनाने के लिए अपनी खुद की कहानियों को लिखने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करता है। स्कूल प्रमुख को शिक्षक और छात्रों के बीच की दूरी को पाटने के रूप में इस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए शिक्षकों को प्रोत्साहित करने की जरूरत है।

नगरीय वंचित समूहों और बहु सांस्कृतिवाद की अपनी विशिष्ट शैक्षिक समस्याओं, और बहु-भाषाई चुनौतियों से अन्य देश भी इन मुद्दों से जूझ रहे हैं, और यह केवल भारत तक ही सीमित नहीं हैं। अलग ढंग से वंचित और प्रवासी बच्चों को शिक्षित करने के लिए मुद्दों के प्रकार का है, हालांकि अलग अलग देशों में शिक्षकों आम सुदृढ़। इन देशों ने अपने स्कूलों के छात्रों को स्कूल की भाषा में दक्षता प्राप्त करने के लिए अलग-अलग वर्गों के लिए माता-पिता और समुदाय के साथ सहयोग, विभिन्न समुदायों और राष्ट्रीयता के बच्चों को पड़ोस के स्कूलों में दाखिला करवाया शोधकर्ता ने 2012 में नाटिंघम में ब्रिटिश स्कूलों और कई भारतीय स्कूलों का दौरा किया। क्षेत्र अनुभवों की चर्चा निम्नलिखित हैं:

ब्रिटेन और भारत के क्षेत्र अनुभव

शोधकर्ता, भाषाई और नगरीय वंचित बच्चों के लिए सेवारत स्कूलों के कार्यात्मक प्रणाली को देखने के लिए ब्रिटेन और भारत में कुछ स्कूलों का दौरा किया। मुख्य उद्देश्य स्कूल स्तर पर 'नेतृत्व कौशल' को देखने के लिए था। इस अध्ययन के दौरान कई तरीके जैसे पाठ अवलोकन, शिक्षकों, मध्य नेताओं, छात्रों के साथ आयोजित चर्चा के साथ-साथ अनौपचारिक विचार विमर्श, शिक्षकों की परीक्षा योजना, पाठ्यक्रम, कक्षा प्रक्रियाओं आदि के रूप में विभिन्न दृष्टिकोण से जानकारी प्राप्त करने के लिए उनको इस्तेमाल किया गया। कोई भी दो स्कूल समान नहीं हैं और प्रधान शिक्षक की प्रबंधन

शैली बच्चों के लिए अलग है। इसे देखते हुए प्रत्येक स्कूल का एक संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है:

स्पेंसर अकादमी स्कूल, नाटिंघम: प्रत्येक बच्चे के लिए व्यक्तिगत समर्थन

जॉर्ज स्पेंसर अकादमी माध्यमिक विद्यालय और उसी परिसर में छठी से स्कूल चलाता है। छात्रों को ग्यारह साल की उम्र में जॉर्ज स्पेंसर में दाखिला मिलता है। यह तीन फीडर स्कूल है। छात्र 11 साल (उम्र 16) के अंत में आधे छात्र अकादमी की आगे की शिक्षा में रहने के लिए चुनते हैं। स्कूल का मिशन नवाचार और व्यक्तिगत शिक्षा के माध्यम से उत्कृष्टता प्राप्त करना है। जॉर्ज स्पेंसर अकादमी का अपना जीएसए रेडियो स्टेशन है और यह दैनिक प्रसारण करता है और एक कंप्यूटर प्रोग्राम के माध्यम से पूरे स्कूल के लिए उपलब्ध है। स्कूल 2010 में अकादमी में परिवर्तित कर दिया गया है, इस प्रकार इसे वित्तीय और प्रशासनिक स्वायत्तता प्राप्त हो रही है।

हेड टीचर ने सूचित किया कि स्कूल चार सत्रों में चल रहा है और रिपोर्ट नियमित रूप से माता-पिता को भेजी जाती है। गृह कार्य ज्ञान आधारित है और नियमित रूप से मूल्यांकन किया जाता है। गृह कार्य गुणवत्ता का मूल्यांकन किया जाता है। छात्र का आकलन तीन स्तरों पर किया जाता है:- आत्म मूल्यांकन छात्र द्वारा, साथियों के समूह द्वारा और शिक्षक द्वारा। प्रत्येक बच्चे की प्रगति का आकलन अधिगम प्रबंधक द्वारा किया जाता है और यदि आवश्यक हो तो बच्चे विकास हेतु समर्थन प्रदान करते हैं। स्कूल के वित्तीय पहलू और बजट के लिए एक व्यवसायिक प्रबंधक है। स्कूल के शिक्षकों की नियुक्ति हेतु विद्यालय की प्रगति पर नजर रखने हेतु एक शासी निकाय है। यह स्पष्ट हो गया था कि स्कूल के पास स्वायत्तता है- प्रबंधन में, सामग्री विकास में। छात्रों और अभिभावकों एवं स्कूल के प्रति शिक्षकों की जवाबदेही के साथ स्वायत्तता को युग्मित किया गया था। छात्रों और शिक्षकों को शैक्षिक और व्यावसायिक सहायता हेतु ऑनलाईन समर्थन प्रदान किया गया।

यह सुनिश्चित किया जाता है कि स्कूल प्रमुख द्वारा प्रत्येक बच्चे पर पूरा ध्यान दे और प्रत्येक बच्चे के विकास की जरूरत शिक्षकों द्वारा पूरी की जाये।

शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी का उपयोग कोटग्रेव प्राथमिक स्कूल: मध्यम नेतृत्व का प्रदर्शन व्यवहार में।

कोटग्रेव स्कूल तीन स्थानीय स्कूल के एकीकरण से बनाया गया था। 500 से अधिक छात्रों की संख्या के साथ, यह औसत प्राथमिक विद्यालय की तुलना में बहुत बड़ा है।

बच्चों की सबसे ज्यादा संख्या ब्रिटिश पृष्ठभूमि से है। अल्पसंख्यक जातीय विरासत या जो पहली भाषा के रूप में अंग्रेजी में बात नहीं करते, वे अनुपात में बहुत कम हैं। अधिकांश विद्यार्थी अपनी उम्र के अनुसार कम प्राप्ति के स्तर के साथ स्कूल में प्रवेश लिये हैं। स्कूल प्रमुख, की नीति है कि वंचित बच्चों के लिए स्कूल को समावेशी बनाने के लिए कार्यक्रमों और नीतियों को अपनाने की जरूरत है जो कि स्कूल का लक्ष्य है। स्कूल प्रमुख, समेकन को एक प्रभावी ढंग से व्यवहार में लाते हुए देखा गया।

स्कूल ने समुदाय और माता-पिता के साथ संबंध स्थापित किया है। समुदाय से बातचीत करने के लिए स्कूल रात 09:00 बजे तक खुला रहता है। माता-पिता को ई-मेल, ट्विटर और फेसबुक के माध्यम से संपर्क किया जाता रहा है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को उनके सीखने की सुविधा के लिए विशेष ध्यान दिया जाता है। पाठ्य पुस्तकों के बजाय शिक्षक अपनी स्वयं की ई-सामग्री का उपयोग करना पसंद करते हैं। बच्चे के पास आई-पैड है और प्रौद्योगिकी का उपयोग करना जानते हैं। छात्र नेता आसानी से स्कूल की संरचना और कार्यों के बारे में समझा सकते हैं। प्रत्येक सदस्य का चाहे छात्र, शिक्षक या प्रधान शिक्षक हो अपनी भूमिका और जिम्मेदारी के बारे में जानता है। प्रत्येक स्तर पर नेतृत्व के विकास का यह एक ज़ीता-जागता उदाहरण है। स्कूल की एक प्रमुख ताकत यह है कि हर कोई एक ही दिशा में चल रहा है। यह इसलिए है कि न केवल यह स्कूल प्रमुख की दृष्टि का हिस्सा है बल्कि सभी स्टाफ सदस्य और छात्र अपने स्कूल के उद्देश्य और लक्ष्य के बारे में स्पष्ट हैं और वे उस दिशा में एक साथ काम करते हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक शिक्षकों द्वारा पाठ्यक्रम संचालित करने का तरीका है। बच्चों की विभिन्न शिक्षण शैली के अनुसार प्रयोग और नए तरीकों से शिक्षण विधियों को अपनाते हुए शिक्षकों को देखा गया। शिक्षक अपने काम के लिए प्रतिबद्ध हैं; जिसका श्रेय वे स्कूल नेतृत्व को देते हैं।

डिजॉनगॉगली सिटी अकादमी, नॉटिंघमः कार्य-व्यवहार में नेतृत्व

डिजॉनगॉगली सिटी अकादमी, एक माध्यमिक विद्यालय है जिसे 2003 में अकादमी का दर्जा मिल गया है और आईसीटी के उपयोग में माहिर है। यह विभिन्न अभिनव तरीकों के अभ्यास द्वारा छात्रों के शैक्षणिक परिणामों में सुधार करने के लिए कठिन प्रयास कर रहा है और उनमें से एक है प्रत्येक स्तर पर नेतृत्व की गुणवत्ता का विकास। एक और महत्वपूर्ण विशेषता बड़े पैमाने पर कक्षा में और कक्षा के बाहर प्रौद्योगिकी का उपयोग है। स्कूल पड़ोस के दो प्राथमिक स्कूलों के लिए शैक्षणिक और तकनीकी

सहायता प्रदान कर रहा है। यह समूह कार्रवाई में वितरणात्मक नेतृत्व देख सकता था। इस शैक्षिक यात्रा का मुख्य फोकस स्कूल में आईसीटी सुविधाएं और कैसे शिक्षक और छात्र इसका उपयोग कर रहे हैं, देखने के लिए किया गया था। आईसीटी विभाग के प्रमुखों समूह के साथ बातचीत की। प्रधानाचार्य बातचीत करने के लिए नहीं आया क्योंकि उसे विश्वास था कि उसके स्कूल के शिक्षक ही बातचीत कर सकते हैं। स्कूल में बड़े पैमाने पर शिक्षण में आईसीटी विकसित किया गया है और इंटरैक्टिव सफेद बोर्ड और प्रोजेक्टर का उपयोग कर रहा है। बच्चों, साथियों और शिक्षकों द्वारा आत्म मूल्यांकन – तीन स्तरों पर स्कूल की प्रभावशाली प्रथाओं में एक है। प्रत्येक बच्चे के साथ एक परंपरागत दृष्टिकोण नहीं चलेगा, यह पहचानते हुए प्रत्येक को बच्चे की योग्यता के स्तर के अनुसार शिक्षा और काम दिया जाता है। स्कूल में खेल, नाटक और संगीत के साथ गतिविधियों पर ध्यान देने के लिए अच्छा बुनियादी ढांचा है। स्कूल के प्रत्येक सदस्य को निश्चित भूमिका और जिम्मेदारी दी गई है। स्कूल संतोषजनक स्तर से उत्कृष्टता स्तर पर अपनी वरीयता में सुधार करने के लिए कोशिश कर रहा है।

सिनियानटन कॉफ ई-प्राइमरी स्कूल : *समावेशी संस्कृति*

यह प्राथमिक स्कूल 150 साल पहले स्थापित किया गया है और देश में अंग्रेजी स्कूलों के सबसे पुराने स्वैच्छिक चर्च सहायता प्रदान में से एक माना जाता है। स्कूल एक विविध आबादी के साथ चल रहा है और बच्चों को प्राप्ति और आत्मसम्मान के अपने स्तर को बढ़ाने के लिए समान अवसर दिया जाता है, जिसमें एक हर्षित, उत्तेजक और चुनौतीपूर्ण माहौल बनाने का प्रयास किया जाता है। 225 छात्रों और 25 के आसपास शिक्षण स्टाफ और शिक्षा सहायकों के साथ यह स्कूल है।

तीन निरीक्षण आफस्टेड द्वारा आयोजित किए गए। छात्र व्यवहार और उपलब्धि में 2002 में यह 'कम' पाया गया था और 2008 में यह स्कूल 'अच्छा' पाया गया तथा 2011 में आफस्टेड ने इसे 'उत्कृष्ट' बताया। चर्च बोर्ड के सदस्यों द्वारा स्कूल की गतिविधियों का निरीक्षण किया जाता है, क्योंकि यह चर्च से भी वित्तीय सहायता प्राप्त करता है। 1 जनवरी, 2013 को यह स्कूल अकादमी में बदल गया। अलग धर्म, जातीय और भाषाई समूहों के बच्चे इस स्कूल में एक साथ पढ़ते हैं। विद्यार्थियों की एक अच्छी औसत एक अतिरिक्त भाषा के रूप में अंग्रेजी सीख रही है। मुफ्त भोजन के लिए पात्र छात्र अनुपात में औसत से अधिक है।

स्कूल में 7% बच्चे विशेष आवश्यकता वाले हैं और व्यवहार समस्या से ग्रस्त बच्चे भी हैं। प्रत्येक बच्चे के लिए विशेष सहायता प्रदान करने हेतु शिक्षक हैं। बुनियादी स्तर के अंत में, छात्रों को माध्यमिक विद्यालय में अनुभव लेने हेतु भेजा जाता है। माध्यमिक विद्यालय के अधयापकों को भी छात्रों के साथ परिचित होने के लिए प्राथमिक स्कूल के लिए आमंत्रित किया जाता है। यह स्कूलों के दो स्तरों के बीच संबंधों का निर्माण करने में मदद करता है। समूह ने तीन अलग-अलग स्कूलों के शिक्षकों के मूल्यांकन और छात्रों की उत्तर पुस्तिकाओं की जांच में मध्यस्थता कर रहे विभिन्न स्कूलों के बीच सहयोग को देखा।

स्कूल, पड़ोस में अन्य स्कूलों की क्षमता के निर्माण हेतु शिक्षा में मदद, प्रशिक्षण विकास, सुविधा प्रदान कर रहा है, वास्तव में यह एक शिक्षण स्कूल है। सिनियानटन कॉफ ई-प्राइमरी स्कूल के कार्यकारी प्रमुख दो अन्य स्कूलों के शिक्षकों को अकादमिक सहायता प्रदान कर रहे है।

भारत में नगरीय वंचितों की सेवा करने वाले स्कूल

शोधकर्ता दिल्ली, लुधियाना (पंजाब में शहर) और हैदराबाद (आंध्र प्रदेश की राजधानी) की तरह अलग अलग शहरों में स्लम क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों के लिए कई स्कूलों का दौरा किया। सभी स्कूलों में मुख्य रूप से गरीब आर्थिक पृष्ठभूमि वाले और अधिकांश बच्चे अन्य राज्यों से थे। इस प्रकार भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के साथ काम करना इन स्कूल प्रमुखों के लिए चिंता का प्रमुख क्षेत्र है। इन सभी स्कूलों में शिक्षक एक ही समुदाय से नहीं थे और अन्य स्थानों से आये थे। अधिकांश स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं की कमी और कक्षा में अधिक भीड़भाड़ थी। स्कूल प्रमुख नियमित आधार पर प्रशासनिक और प्रबंधकीय कार्य करते हुए पाये गये। कुछ क्षेत्रों में गैर सरकारी संगठन-स्वास्थ्य शिविरों की व्यवस्था, स्कूल से बाहर बच्चों का दाखिला, निजी स्कूलों में दाखिला सुनिश्चित करने, उपचारात्मक शिक्षण कक्षाएं चलाना तथा इन बच्चों की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए काम करते हुए पाए गए। स्कूल प्रमुख प्रथागत आधार पर स्कूल योजना तैयार कर रहे थे। प्रसंग, पर्यावरण और समुदाय को देखते हुए स्कूल प्रमुख का दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है। चुनिंदा स्कूलों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है:

राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, इंदिरापुरी: 2001 में स्थापित यह स्कूल इंदिरापुरी, लुधियाना में स्थित है। यह एक सरकारी हायर सेकेंडरी सह-शिक्षा विद्यालय है और डबल शिफ्ट में है। स्कूल में प्राथमिक फीडर स्कूल हैं और पड़ोस के अन्य बच्चों को भी इस स्कूल में दाखिला मिल सकता है। इस स्कूल में छात्रों की कुल संख्या 485 है। जिनमें से 50.9 प्रतिशत लड़कियां और 49.1 प्रतिशत लड़के हैं। बुनियादी ढांचा संबंधी संकेतक इमारत और कक्षाएं अच्छी हालत में थे। स्कूल में पृथक बिजली कनेक्शन के साथ लड़कियों के लिए अलग शौचालय है। पुरुषों और महिलाओं समेत 17 अध्यापक हैं जिनमें से प्रधानाचार्य समेत 5 पुरुष अध्यापक और 12 महिला अध्यापक हैं। स्कूल में 14 प्रशिक्षित शिक्षक हैं, जिनमें से 9 स्नात्तकोत्तर हैं, 5 स्नातक एवं दो माध्यमिक स्तर के नीचे हैं। स्कूल के लिए दो अधिक शिक्षकों की आवश्यकता है। स्कूल प्रमुख के अनुसार मुख्य समस्या यह है कि घर से संबंधित कारकों के कारण छात्रों का अधिगम स्तर निम्न है। प्रत्येक शिक्षक को किसी काम के लिए प्रभारी बनाया गया था जैसे मध्याह्न भोजन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संगठन, खेल गतिविधियों का पर्यवेक्षण। यह स्कूल की महत्वपूर्ण विशेषता में से एक रहा। हालांकि चर्चा के दौरान स्कूल प्रमुख ने प्रशासनिक कार्यों के बारे में अधिक चिंता जाहिर की और कहा कि शैक्षिक सहायता प्रदान करने हेतु या शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का पालन करने के लिए कक्षा में जाने का समय नहीं मिल पाता है।

राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, श्रृभा नगर: यह विद्यालय श्रृभा नगर, लुधियाना में स्थित है। यह स्कूल 1056 वर्ग मीटर के क्षेत्र में है और यह 1974 में स्थापित एक सरकारी सह शिक्षा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय है। इस स्कूल में प्रवेश खुले द्वार की नीति के माध्यम से है। इमारत और कक्षाएं संबंधित बुनियादी संकेतक सुविधाएं अच्छी हालत में थे। स्कूल में लड़कियों के लिए शौचालय, पृथक बिजली कनेक्शन, और खेल के मैदान की सुविधा है। हालांकि यह अच्छे हालात में नहीं है। कुल 14 शिक्षकों में से 3 प्रधानाध्यापक सहित पुरुष शिक्षक हैं और 11 महिला शिक्षक हैं। जहां तक शिक्षकों की योग्यता का सवाल है, छह स्नातक शिक्षक हैं तथा चार स्नातकोत्तर शिक्षक हैं।

स्कूल प्रमुख प्रात: प्रार्थना के साथ स्कूल की दिनचर्या शुरू करता है, वह भवन की सफाई सबसे पहले देखता है। फिर विभाग से प्राप्त मेल, कागजातों पर हस्ताक्षर करता है तथा विभिन्न गतिविधियों के संबंधित शिक्षक प्रभारी से मिलता है। महीने में एक बार

या दो बार स्कूल प्रमुख कर्मचारियों की बैठक आयोजित करता है। स्कूल प्रमुख की दैनिक गतिविधि प्रशासनिक और प्रबंधकीय कार्य पर ध्यान केंद्रित करने की है जहां, तक माता पिता–शिक्षक सहयोग का सवाल है तो स्कूल प्रमुख माता–पिता का योगदान नहीं करवा पाते क्योंकि उनको स्कूल में आने के लिए मनाना बहुत मुश्किल है। स्कूल में उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान से प्रवासियों की बड़ी आबादी थी और बच्चों को बड़ी संख्या में भाषाई कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। स्कूल प्रमुख अगले शैक्षणिक सत्र से चुनिंदा विषयों के लिए अंग्रेजी माध्यम शुरू करने की योजना हेतु पहल कर रहे हैं।

राजकीय एस.वी.बी.पी. स्कूल, आसिफ नगर: यह विद्यालय आसिफ नगर, हैदराबाद में स्थित है। यह एक सरकारी उच्च सह शिक्षा विद्यालय है और डबल शिफ्ट में चलता है। इस स्कूल में दाखिला खुले द्वार की नीति के माध्यम से है। इस स्कूल में छात्रों की कुल संख्या 250 है जिनमें से 53.4 प्रतिशत लड़के और 46.6 प्रतिशत लड़कियां हैं। आधारभूत ढांचा से संबंधित संकेतक इमारत और कक्षाएं संतोषजनक हालत में नहीं थे। स्कूल का आर्किटेक्चर कमजोर था। लड़कियों को खेल गतिविधियों के लिए अवसर नहीं मिलता है। कुल 13 शिक्षक इस स्कूल में कार्यरत हैं, जिनमें से चार पुरुष शिक्षक और नौ महिला शिक्षक हैं। सभी शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जा चुका है। उनमें से छह स्नातकोत्तर हैं जबकि छह स्नातक स्तर की योग्यता प्राप्त कर चुके हैं। स्कूल को तीन अधिक शिक्षकों की आवश्यकता है। जगह की कमी की वजह से स्कूल में अनुकूल परिवेश उपलब्ध नहीं है। यहाँ तक कि स्कूल प्रमुख ने सीखने के माहौल में सुधार करने के बजाए समस्याओं के बारे में अधिक चर्चा की।

जी.एच.एस. देवल जाम सिंह, गुदिमालकपुर: यह विद्यालय गुदिमालकपुर, हैदराबाद में स्थित है। यह 1950 में स्थापित एक सरकारी उच्च विद्यालय है और एक शिफ्ट के साथ, सह–शिक्षायुक्त है। स्कूल शिक्षा के माध्यम के रूप में तेलुगु और अंग्रेजी में चल रहा है। इस स्कूल में दाखिला प्रवेश परीक्षा के माध्यम से है। स्कूल में छठी कक्षा से दसवीं कक्षा है। इस स्कूल में छात्रों की कुल संख्या 455 है जिनमें से 47.4 प्रतिशत लड़के और 52.6 प्रतिशत लड़कियां हैं। स्कूल अच्छी तरह से कंप्यूटर के साथ सुसज्जित है, लेकिन कनेक्टिविटी बाधित है, जो एक निजी कंपनी (IEG) द्वारा प्रदान की जाती है। स्कूल में लड़कियों के लिए अलग शौचालय है, बिजली कनेक्शन है, लेकिन उनके पास बिजली बिल के लिए पैसा नहीं प्रदान किया जाता है। स्कूल में खेल के मैदान की

सुविधा नहीं है। 18 शिक्षकों की कुल संख्या स्कूल में कार्यरत हैं। कक्षा की संख्या अपर्याप्त है। स्कूल के अनुसार स्कूल का रखरखाव एक बड़ा मुद्दा है और शिक्षण पारंपरिक विधि के माध्यम से किया जा रहा है।

शोधकर्ता, दोनों देशों के स्कूल प्रमुखों के बीच का निरीक्षण कर यह कह सकता है कि महत्वपूर्ण अंतर यह है कि भारत में स्कूल प्रमुख प्रशासनिक और प्रबंधकीय कार्य के साथ लगे हुए हैं और शिक्षण में पहल करने और नए प्रयोगों की कोशिश में आगे नहीं आ रहे हैं। ब्रिटेन में, स्कूलों में अधिक से अधिक स्वायत्तता और बेहतर सुविधाएं हैं। भारत में शिक्षकों की तैनाती व्यवस्था करने के लिए है और उन्हें किसी भी स्कूल में तैनात किया जा सकता है, जबकि ब्रिटेन में शिक्षकों को अधिक जवाबदेह बनाने हेतु एक स्कूल के लिए नियुक्त किया जाता है। शिक्षकों में से अधिकांश विशिष्ट मुद्दों से परिचित नहीं होने के बावजूद, नगरीय स्कूलों में रहना पसंद करते हैं। ब्रिटेन में स्कूल प्रमुख विविधता और उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न तरीकों की कोशिश के साथ उन्मुख होते हैं। हालांकि, ब्रिटेन में भी स्कूल प्रमुख सभी बच्चों के लिए न्यायसंगत अधिगम को सुनिश्चित नहीं कर सकते।

समापन टिप्पणियाँ

वर्तमान आलेख नगरीय गरीब क्षेत्र में स्थित स्कूलों के विशिष्ट गुणों और स्कूल प्रमुखों की भूमिका इसमें उजागर करने के लिए एक प्रयास करता है। नगरीय आबादी के लिए सेवारत सरकारी स्कूलों में मुख्य रूप से विभिन्न भाषाई और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ बच्चे पढ़ रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में स्कूल प्रमुख का काम प्रत्येक बच्चे को अधिगम के समान अवसर देने के लिए इन स्कूलों को समावेशी बनाना है। इसका अर्थ है, स्कूल प्रमुखों को स्कूलों में अधिक समावेशी बनाने के लिए और अधिक सक्रिय होने की जरूरत है। एक लाभ के रूप में सांस्कृतिक मतभेदों पर विचार करने की जरूरत है जो सभी विद्यार्थियों की पढ़ाई को समृद्ध करेगी। गरीबी से त्रस्त परिवारों, मूल स्थान से पलायन, विभिन्न गृह भाषा, तनाव के उच्च स्तर, अभिभावकों की भागीदारी में कमी को देखते हुए, स्कूल प्रमुखों को बारीकी से कर्मचारियों के साथ काम करने की जरूरत है और समुदाय के सभी बच्चों को एक खुशहाल तरीके से अधिगम सुनिश्चित करने हेतु उपयुक्त रणनीति तैयार करनी चाहिए। उन्हें अपने विशिष्ट परिवेश, शैक्षिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति संवेदनशील होने की जरूरत है।

भारत में स्कूल नेतृत्व की प्रथाओं में स्कूल में अनुशासन, स्कूल रिकॉर्ड का रखरखाव, उच्च अधिकारियों को जानकारी प्रस्तुत करना, विभिन्न योजनाओं के तहत प्रोत्साहन का वितरण जैसे दिनचर्या कार्यों की देखरेख तक सीमित है, भारत में स्कूल नेतृत्व परिवर्तन निर्माताओं के रूप में खुद को नहीं देखते। उनके पास आवश्यक ज्ञान और कौशल या योग्यता नहीं है। अपने आप में पहल लेने वाले और स्कूल नेतृत्व के व्यवहार में बदलाव लाने के संबंध में, प्रणाली उदासीन प्रतीत होती है, और कुछ मामलों में यह नकारात्मक परिणाम देती है। नतीजतन स्कूलों के प्रदर्शन के प्रति उदासीनता प्रणाली में निहित है। इसमें कई स्तरों पर परिवर्तन की शुरुआत से निपटा जा सकता है। कोई बात बिगड़ जाए तब उन्हें सही करने के लिए अवसरों के साथ स्कूल के नेताओं द्वारा नवाचार और पहल को महत्व देने हेतु व्यवस्था को तैयार किया जाना चाहिए। प्रणालीगत परिवर्तन के अभाव में, ज्ञान और कौशल में प्रशिक्षण परिवर्तन लाने में मददगार नहीं होगा। दूसरे, स्कूल नेतृत्व को आवश्यक ज्ञान और कौशल से लैस करने की आवश्यकता है और अपने स्कूल में उन्हें प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तीसरी और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न संदर्भों में स्कूल की गतिविधियों में निर्देशन हेतु स्कूल के नेताओं की योग्यता को विकसित करना होगा। इस क्षेत्र में अनुसंधान की बहुत कमी है। विद्यालय नेतृत्व पर क्षमता निर्माण कार्यक्रमों में तत्काल लाभ प्रदान करने हेतु यह अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

संदर्भ

बेक एल.जी. और मर्फी जे. (1993) *अंडरस्टेंडिंग द प्रिंसिपलशिप: मेटाफोरिकल थीम* 1920–1990, न्यूयार्क शिक्षक कालेज प्रेस

ब्लैकमोर जे. (2006) डिकन्स्ट्रक्टिंग डायवरसिटी डिसकोर्सेस इन द फील्ड आफ एजुकेशनल मेंनेजमेंट एंड लीडरशिप इन *एजुकेशनल मेंनेजमेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन* 34, 181–89

चुघ सुनीता (2012) एजुकेटिंग अर्बन डिसअडवांटेज्ड चिल्ड्रन इन इंडिया: चैलेजस फार टीचर्स। डी. परिमला, संपादक, *रोल आफ टीचर्स इन चेंजिंग कॉंटेक्स्ट: पालिसी एंड प्रैक्टिस* (2012), कनिष्क प्रकाशक, नई दिल्ली

कोलबर्ट, जे.ए. और वोल्फ, डी.ई., (1992): सरवाईविंग इन अर्बन स्कूल्स: ए कौलाबोरेटिव मॉडल फार ए बिगनिंग टीचर सपोर्ट सिस्टम। *जर्नल आफ टीचर एजुकेशन*, 43(3), 193–199।

फुलर, एम.एल., (1994): द मोनोकल्चर ग्रेजुएट इन द मल्टीकल्चर इनवायरमेंट: ए चैलेन्ज फार टीचर एजुकेटर्स, *जर्नल आफ टीचर एजुकेशन*, 45 (4), 269–277।

गैरी ओरफील्ड और चुंगमी ली (2005) *व्हाई सेग्रेगेशन मैटर्स: पावर्टी एंड एजुकेशनल इन्इक्वालिटी सिविल राइट्स प्रोजेक्ट रिपोर्ट,* हावर्ड यूनिवर्सिटी

गेर्विट्ज, एस. (2002) द *मेंनेजेरियल स्कूल: पोस्ट वैलफेयरिज्म एंड सोशल जस्टिस इन एजुकेशन*, रूटलेज, लंदन

गोलनिक, डी.एम., और चिन, पी.सी. (2002) मल्टीकलचरल एजुकेशन इन ए प्लूरेलस्टिक सोसायटी (6 एड।)। अपर सैडल रिवर, एनजे: पियर्सन एजुकेशन इंकार्पोरेशन

गंटर एच.एम. (2006) एजुकेशनल लीडरशिप एंड द चैलेंज आफ डायवरसिटी इन *एजुकेशनल मेंनेजमेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन* 34(2) 257-268

हाबरमैन, एम. (1992) अल्टरनेटिव सर्टिफिकेशन: कैन द प्राब्लम्स आफ अर्बन एजुकेशन बी रिसोब्ल्ड बाई ट्रेडिशनल टीचर एजुकेशन? *टीचर एजुकेशन एंड प्रैक्टिस (स्प्रिंग/ समर)*: 13-27।

कराजगी गुरुराज न्यू पैराडीज्म फार टीचर्स एजुकेशन फार ट्वन्टी फस्ट सेंचुरी, http://actedu.in?htm

लुइस, के.एस., लीथवुड, के. वाल्सटॉम के. और एंडरसन एस. (2010): इंवैस्टीगेटिंग द लिंक्स टू इम्प्रूव्ड स्टूडेंट लर्निंग: *फाइनल रिपोर्ट आफ रिसर्च फाइंडिंग* रिट्रीव फ्राम वाल्स फाउंडेशन

मिलर श्रीन (2005) लैंग्वेज इन एजुकेशन: आर वी मीटिंग द नीड्स आफ लिंगुविस्टिक मिनोरिटीज़ इन सिटीज़? इन बनर्जी रुक्मणी एंड श्रीनारायण, एडीटर, सिटी चिल्ड्रन, *सिटी स्कूल्स: चैलेंजेज आफ युनिवर्सलाइजिंग एलिमेंट्री एजुकेशन इन अर्बन इंडिया, प्रथम रिर्सोस सेंटर, नई दिल्ली*

थियोहरी जी. (2007) सोशियल जस्टिस एजुकेशनल लीडर्स एंड रेसिसटेंस टूवार्ड्स ए थियोरी अफ सोशल जस्टिस लीडरशिप, *एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन क्वाटर्ली 43(2),* 221-258

सर्जियोवनी, टी.जे., (1995) द *हैड टीचर्स: ए रिफ्लैक्टिव पर्सपैक्टिव,* बोस्टन अली और बेकन

राइट, जे. (1980 *एजुकेशन आफ मिनोरिटी स्टूडेंट्स: प्राब्लम्स एंड चैलेंजेज, द मिनोरिटी स्टूडेंट इन पब्लिक स्कूल्स,* प्रिंसटन: एजुकेशनल टैस्टिंग सर्विस।

जेंबिल्स एम. एंड इसोनस एस. (2010) नेतृत्व शैली और बहुसंस्कृतिवादी शिक्षा दृष्टिकोण: रिश्ते की खोज *शिक्षा क्षेत्र में नेतृत्व का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, अप्रैल-जून 2010*, अंक 13, सं. 2, 163-183

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

शिक्षा और आधुनिकता के संदर्भ में संस्कृत शिक्षण-अधिगम का प्रयोजन

राजेश प्रसाद सिंह*

प्रस्तावना

भारतीय विद्यालयी शिक्षा के अन्तर्गत भाषाओं एवं इनके शिक्षण का अपना एक विशिष्ट स्थान व प्रावधान है। बहुभाषी देश होने के नाते सामान्य रूप से यह माना जाता है कि एक विद्यार्थी को भी बहुभाषी होना चाहिए। अत:, एतदर्थ 'त्रिभाषा सूत्र' के अन्तर्गत प्रत्येक विद्यार्थी से तीन भाषाओं का अध्ययन अपेक्षित है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में भी स्वीकार किया गया है कि- *'आज हम निश्चित रूप से जानते हैं कि द्विभाषिकता या बहुभाषिकता से निश्चित संज्ञानात्मक लाभ होते हैं। अत: भाषा शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए।'* इसी बिन्दु को ध्यान में रखते हुए शिक्षा-नीतियों में त्रि-भाषा सूत्र को ही प्राय: स्वीकार किया गया है जिसका स्पष्ट निहितार्थ यह है कि विद्यार्थी को मातृभाषा एवं प्रथम भाषा के अतिरिक्त दो अन्य भाषाएँ भी पढ़नी होती हैं। साथ ही, शिक्षण की दृष्टि से यह भी स्पष्टत: संकेतित होता है कि इन तीनों भाषाओं के शिक्षण की विधा में समानता नहीं होती। कारण स्पष्ट है कि मातृभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा के औपचारिक शिक्षण से पूर्व विद्यार्थी इन भाषाओं के परिवेश से परिचित होता है परन्तु अन्य दोनों भाषाओं के सीखने-सिखाने के संदर्भ में सामान्यत: यह सुविधा प्राप्त नहीं होती। इसी के साथ अन्य भाषा का अधिगम, पूर्व प्राप्त अथवा पठित भाषा से निरन्तर बाधित होता रहता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) ने इसके 'प्रथम भाषा' के रूप में शिक्षण की भी चर्चा की है। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)** ने संस्कृत-शिक्षण के प्रयोजन को अनेक संदर्भों में देखा है, यथा-

- भारतीय विद्या, मानविकी, समाजविज्ञानों में शोध के संदर्भ में।
- ज्ञान के संश्लेषण हेतु अन्तर्विषयक शोध के संदर्भ में।

*शिक्षा विभग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- भारत के प्राचीन ज्ञान के अन्वेषण के संदर्भ में।
- प्राचीन ज्ञान को आधुनिक परिस्थितियों से जोड़ने के संदर्भ में।

यह संपूर्ण परिप्रेक्ष्य संस्कृत-शिक्षण के प्रयोजन को अत्यंत विस्तृत आयाम देता है, अतः शिक्षण-पद्धतियों में परिवर्तन की अपेक्षा भी करता है।

मानवजीवन के 'बौद्धिक एवं सांस्कृतिक' पक्ष के संदर्भ में कहा जा सकता है कि शिक्षा मानवजीवन का आधार बन चुकी है। प्रत्येक समाज से यह अपेक्षा रहती है कि वह कुछ ऐसे कार्य करे जो सबके लिए उपयोगी हो। समाज की एक व्यवस्था के रूप में शिक्षा सर्वोपयोगी जिन कुछ को संपन्न करती है, उनमें प्रमुख हैः समाजीकरण, सामाजिक मूल्यों, आदर्शों तथा संस्कृति का अनुरक्षण तथा संचारण। अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन 'लर्निंग टू बी' में शिक्षा के उद्देश्यों को निम्न प्रकार से देखने का प्रयास किया हैः ज्ञान के उपकरण/साधन प्राप्त करना, भावात्मक गुणों का विकास, विशेषकर व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों के संदर्भ में, सौंदर्यबोध का विकास तथा शारीरिक स्वकल्प का संवर्धन, व्यक्तियों को व्यावसायिक दक्षता से सुसज्जित करना, अच्छे नैतिक चरित्र का विकास करना, नागरिकता के लिए प्रशिक्षत करना और व्यक्तियों को अपनी संस्कृति से भली-भाँति परिचित कराना।

स्पष्ट है कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा अपनी पाठ्यचर्या के रूप में अनेक विषयों व गतिविधियों पर निर्भर रहती है, जिनमें भाषा का एक विशिष्ट स्थान है। भाषा एक ओर जहाँ स्वयं संस्कृति का अंग है, वहीं संस्कृति के हस्तांतरण की एक सशक्त माध्यम भी है। भाषा समाज के बीच विकसित होती है और प्रत्येक समाज की विशिष्ट 'संस्कृति एवं जीवनशैली' का परिचायक होती है।

इस दृष्टि से देखें तो संस्कृत भाषा कई आयामों से हमारे लिए एक अपरिहार्य आवश्यकता है। एक कारण तो यह है कि भारत की अनेक भाषाओं का मूल संस्कृत से संबद्ध है। उनका व्याकरण, शब्दभण्डार और उच्चारण पद्धति इससे जुड़ी है। दक्षिण भारतीय भाषाओं के अनेकानेक शब्द संस्कृत के निकट हैं अथवा संस्कृत के ही हैं। स्वाभाविक है कि संस्कृत भाषा के ज्ञान से किसी की भाषा के विद्यार्थी अथवा अध्येता को भाषिक विकास का लाभ होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है कि - *'शिक्षा की पाठ्यचर्या और प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक वस्तु के समावेश द्वारा अधिक से अधिक समृद्ध किया जाएगा। इस बात का प्रयत्न होगा कि सौन्दर्य, सामंजस्य और परिष्कार के प्रति बच्चों की संवेदनशीलता*

बढ़े। संस्कृति परम्परा में निष्णात व्यक्तियों को, उनके पास औपचारिक शैक्षिक उपाधि न होने पर भी, शिक्षा में सांस्कृतिक तत्त्वों का योगदान करने के लिए आमंत्रित किया जाएगा। इस काम में लिखित व मौखिक दोनों परम्पराएँ शामिल होंगी। सांस्कृतिक परम्परा को कायम रखने व आगे बढ़ाने के लिए परम्परागत तरीके से पढ़ानेवाले गुरुओं और उस्तादों की सहायता ली जाएगी और उनके कार्य को मान्यता दी जाएगी।

स्पष्ट है कि भारतीय सन्दर्भों में यह माना जा सकता है कि यह कार्यभार संस्कृत को सौंपा गया है। यह भी, कि भारत की संस्कृति में प्रवेश 'संस्कृत' के मार्ग से ही हो, तो अच्छा है। संस्कृत में निबद्ध नीतिकथाएँ अथवा अनेकानेक नीति श्लोक इसका सशक्त प्रमाण है। संस्कृत के काव्य, नीतिशास्त्र और ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में उसकी उपलब्धियों से अपरिचित रहकर भारत के ज्ञान को कैसे प्रस्तुत किया जा सकता है? उसके बिना तो भारतीय संस्कृति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भास्कराचार्य का लीलावती ही नहीं, ज्योतिष भी, आधुनिक ज्ञान तक पहुंचने का महत्वपूर्ण प्रवेश द्वार है। पतंजलि के योगसूत्र को संस्कृत के माध्यम से ही समझा जा सकता है। न्याय और नीतिशास्त्र ही नहीं, जैन और बौद्ध साहित्य के निकट भी संस्कृत के रास्ते ही पहुंच सकते हैं। इतनी विविधताओं के बीच 'संस्कृत' ही एक आंतरिक सूत्र है जो समूचे भारत को जोड़ने का काम करता है। संस्कृत को देववाणी का दर्जा देकर सिर्फ पूजा-पाठ तक ही सीमित कर देना-किसी भी भाषा के महत्त्व को प्रयासपूर्वक कम कर के आंकने के बराबर है। अगर प्रयोग करके देखा जाए तो व्यवहार में प्रायः प्रत्येक भारतीय, चाहे वह किसी भी भाषा के भाषी हों, संस्कृत के शब्द अवश्य उनके व्यवहार में आते हैं। अतिशयोक्ति नहीं, यदि कहा जाए कि 'देयर इन ए लिटिट विद संस्कृत इन एवरी बॉडीज लाइफ'- प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में संस्कृत कहीं न कहीं अवश्य है।

प्रतिदिन अभिवादन हेतु प्रयुक्त शब्द 'नमस्कार' अथवा 'नमस्ते' या 'प्रणाम' संस्कृत शब्दों अथवा पदों का प्रयोग ही तो है और हम इस प्रयोग को कठिन भी नहीं मानते।

हम अपने दैनिक वार्तालाप में संस्कृत की लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग करते हैं। हम नाम, प्रतीक, शीर्षक, संकेत, मंगलाचरण, स्वागत इत्यादि के लिए संस्कृत के शब्दों को सटीक मानते हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय', 'सा विद्या या विमुक्तये', 'आरोह तमसो ज्योति', 'सत्यमेव जयते', 'वन्दे मातरम्', 'बहुजन हिताय', 'शं नो वरूणः', 'पंचशील', 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' आदि का प्रयोग प्रायः हम लिखित अथवा मौखिक रूप

से करते ही हैं। हमारे देश के विद्यालयों में प्रतिदिन गाए जाने वाले राष्ट्रगीत तथा राष्ट्रगान के अधिकांश शब्द संस्कृत के ही है। यहाँ तक कि दूरदर्शन पर प्रसारित धारावाहिक में भाव जागरण एवं संप्रेषण–उत्साह, अध्यात्म, शौर्यप्रदर्शन हेतु भी संस्कृत के श्लोकों का गायन शामिल होता है। यह भी स्पष्ट है कि ये इन धारावाहिक हमारे देश के प्रत्येक आयुवर्ग तक पहुंच हैं और व इन श्लोकों के भावों को समझते भी हैं।

उपरोक्त उदाहरणों को आधार मानकर यदि गौर से अनुशीलन करें तो पता चलेगा कि 'सामाजिक रचना' एवं समाज में 'विचार–विनिमय की आवश्यकता' को भाषा के आधार रूप में माना जा सकता है। मूलत: 'भाषा' संस्कृति का अभिन्न अंग मानी जाती है। यही कारण है कि इसे 'सांस्कृतिक तत्त्व' भी कहा जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी भाषा को सुसंस्कृत बनाने का माध्यम मानती है। यह हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर बनाती है, जिससे राष्ट्रीय एकता पनपती है। अर्थात् 'सुसंस्कृत' होने का अर्थ 'राष्ट्रीय भावात्मक एकता' के विकास का प्रश्न है। भारतीय सन्दर्भों में राष्ट्रीय भावात्मक एकता के आधार के रूप में भारत की सामासिक संस्कृति की ओर संकेत है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 ने इसी सामासिक संस्कृति की ओर संकेत किया है। संस्कृति को प्रमुख रूप से राष्ट्रीय अस्मिता के रूप में देखा गया है। शिक्षा को इस 'राष्ट्रीय संस्कृति अथवा अस्मिता' के प्रचार–प्रसार के दायित्व निर्वहन का मुख्य कार्यभार सौंपा गया है।

शिक्षा अपनी औपचारिक व्यवस्था में अपनी पाठ्यचर्या के द्वारा इसका निर्माण करती है। यही कारण है कि राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66) की स्वीकृति है कि *''हम प्राचीन भाषाओं के अध्ययन के महत्त्व की और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पर संस्कृत का जो विशेष दावा है, उसे भी समझते हैं।''*

संस्कृत को हमेशा ही प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: राष्ट्र की अस्मिता के रूप में देखा गया है। यही कारण है कि इसे राष्ट्रीय अस्मिता के रूप में 'अस्तित्व व आकांक्षाओं के आधार के रूप में लेते हुए संस्कृत आयोग (1956–57) का मानना है कि– *''संस्कृत साहित्य (एक ओर वैदिक साहित्य और दूसरी ओर महाकाव्यों, पुराणों) के माध्यम से भारतीय राजतंत्र ने अपने अतीत की समानुरूप और व्यापक व्याख्या की है। साथ ही अपने वर्त्तमान तथा भविष्य के अस्तित्व और आकांक्षाओं को दर्शाया है। इस प्रकार, सांस्कृतिक एकीकरण का विकास हुआ है और इसी संकल्पना के आधार पर सार्वलौकिक आदर्शों की रचना की गई। यह भारतवासियों के एकीकरण की शक्ति बन गई जो उन्हें निरंतर विकसित होने वाली संस्कृत–संस्कृति वृन्त में लायी। इस संस्कृत–संस्कृति में*

विचारों सहित जीवन तथा अस्तित्व संबंधी हर प्रकार की विरोधी प्रवृत्तियों को उचित व सम्माननीय स्थान दिया गया है। इस महान सांस्कृतिक संश्लेषण की भाषीय और साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम 'संस्कृत' ही रही है, जो भारत की तद्रूप है, जिसे 'भारत की आत्मा' या 'भारतवाद' की संज्ञा दी गई है।

प्रयोग से उपयोग की ओर

प्रयोग की दृष्टि से, भारतीय संदर्भों में, माना गया है कि *भारतीय समाज की विषेशता रही है कि वह प्रयोजन सिद्ध भाषा भेद और भाषा व्यवहार को सहजभाव से मान्यता देता आया है। उदाहरण के लिए, पारिवारिक और आत्मीयता के भाव को व्यक्त करने के लिए वह अपनी बोली को चुनता है, क्षेत्रीय व्यवहार के लिए वह जनपदीय भाषा को माध्यम बनाता है और अन्तर्क्षेत्रीय व्यवहार क्षेत्रों के लिए वह किसी एक तीसरी ही भाषा को स्वीकार करता है*।

शिक्षण की दृष्टि से यह ध्यातव्य है कि भारत जैसे बहुभाषी देशों में, भाषा-शिक्षण एवं अधिगम में 'पूर्वपठित भाषा' अथवा 'घर की बोली' आदि का निरन्तर हस्तक्षेप होता रहता है। यह हस्तक्षेप चार स्तरों पर होता है - ध्वनि, शब्द, पद एवं वाक्य। यह हस्तक्षेप 'मौखिक' एवं 'लिखित' दोनों रूपों में होता है।

प्रत्येक भाषा अपनी एक 'विशिष्ट संरचना' से युक्त होने के कारण 'भाषा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया' के दौरान अपने अनेक साहित्यिक रूपों से भी प्रभावित होती रहती है। इस अथवा अन्य अनेक तत्वों के कारण 'भाषा शिक्षण व अधिगम' एक जटिल प्रक्रिया मानी गई है।

वस्तुत: भाषा शिक्षा की संकल्पना एक व्यापक संकल्पना है। एक ओर इसका संबंध बहुभाषीय देश में अंतर्देशीय और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के निर्वाह के लिए सम्पर्क भाषा से रहता है तो दूसरी ओर सामाजिक संस्कार और सांस्कृतिक मूल्य के रूप में संस्कृति संवाहक भाषा से। अत: शिक्षा के संदर्भ में 'भाषा-नियोजन' और 'भाषा-नीति' सामाजिक एवं शैक्षिक उद्देश्यों से समर्थित अथवा बाधित होती है।

भाषा-नीति : त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत का स्थान

भारतीय सन्दर्भों में, व्यावहारिक तौर पर, भाषाओं का शिक्षण भारत सरकार द्वारा स्वीकृत त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत होता है। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा अनुमोदित 'संशोधित त्रिभाषा सूत्र' में भाषाओं को निम्नलिखित क्रम से विद्यालयी पाठ्यचर्या में

रखने की नीति को समर्थन मिला है –

i. मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा,

ii. संघ की राजभाषा (हिन्दी) अथवा (जब तक स्थिति बनी हुई है) संघ की सहयोगी राजभाषा, (अंग्रेज़ी) तथा

iii. आधुनिक भारतीय भाषा अथवा विदेशी, वह भाषा जो (i) और (ii) के अंतर्गत न आती हो और शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में प्रयुक्त न होती हो।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66) पर आधारित शिक्षा–नीति (1968) की भाषा–नीति, इस तथ्य की ओर संकेत देती है कि विद्यालयी शिक्षा में कौन–कौन सी भाषाएँ, कब शुरू की जाएँ, कितने समय तक उन्हें पढ़ाया जाए, किस भाषा को प्रथम भाषा माना जाए और किसे अन्य भाषा के रूप में पढ़ाया जाए आदि। इस नीति के अनुसार प्रथम भाषा के रूप में मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा का दस वर्षों तक पढ़ना–पढ़ाना अपेक्षित है। द्वितीय भाषा प्राय: सहराजभाषा के रूप में अंग्रेज़ी का (पाँचवीं से दसवीं कक्षा तक छह वर्षों के लिए) पढ़ना–पढ़ाना अपेक्षित है। आठवीं से दसवीं कक्षा में तीसरी भाषा के रूप में किसी आधुनिक भारतीय भाषा की पढ़ाई तीन वर्षों के लिए अपेक्षित है। उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं अर्थात् ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में अनिवार्यत: एक भाषा (केंद्रिक रूप में) का पढ़ना–पढ़ाना अपेक्षित है। एक अन्य भाषा भी वैकल्पिक (ऐच्छिक) रूप में पढ़ी जा सकती है। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में अनेक विदेशी भाषाओं को भी स्थान प्राप्त है। राष्ट्रीय शिक्षा–नीति (1968) के अनुसार त्रिभाषा–सूत्र को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है –

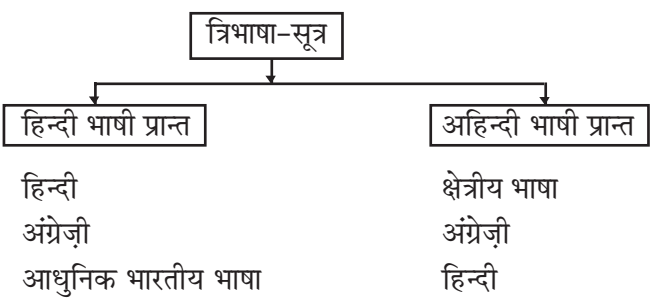

इस सूत्र से स्पष्ट है कि इसमें संस्कृत का स्थान नहीं है। जिस समय यह सूत्र लागू किया गया था उस समय शिक्षा राज्यसूची के अन्तर्गत थी। अत: अपनी सुविधाओं आदि के अनुसार राज्यों ने तृतीय भाषा के रूप में 'संस्कृत' को स्वीकार किए रखा। 'प्रत्येक राज्य

ने संघ की इस भाषा-नीति को समरूपी भाव से नहीं अपनाया है। सैद्धांतिक अथवा व्यावहारिक तौर पर, इस भाषा-नीति ने प्रत्येक राज्य की शिक्षा व्यवस्था और स्कूल की पाठ्यचर्या को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है।'

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने भाषा-नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन न करते हुए 1968 की रा.शि.नी. की भाषा-नीति के त्रिभाषा सूत्र का ही अनुमोदन किया। तदनुसार *- 1968 की शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास के प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार किया गया था। उस नीति की मूल सिफारिशों में सुधार की गुंजाइश शायद ही हो और वे जितनी प्रासंगिक पहले थी, उतनी ही आज भी हैं, किन्तु देशभर में 1968 की शिक्षा नीति का पालन एक समान नहीं हुआ। अब इस नीति को अधिक सक्रियता से लागू किया जाएगा।*

इस समय तक शिक्षा समवर्ती सूची का विषय बन चुकी थी। इसका सर्वाधिक प्रभाव शिक्षा-व्यवस्था में 'संस्कृत' के स्थान पर पड़ा। भाषा सूत्र में संस्कृत का स्थान न होने के कारण संस्कृत एक 'अतिरिक्त भाषा' के रूप में पढ़ी-पढ़ाई जाने लगी। इसका सीधा प्रभाव संस्कृत-शिक्षण विधा पर भी पड़ा। यह मान्य सिद्धांत है कि ''जिस तरह भाषा संबंधी पाठ्यचर्या को सरकार की भाषा-नीति प्रभावित करती है उसी प्रकार भाषा संबंधी पाठ्यचर्या को उस भाषा संबंधी ज्ञान और शिक्षा संबंधी शोध प्रभावित करते हैं।

सारत:, किसी भी राष्ट्र में भाषाओं की स्थिति राष्ट्र की विभिन्न स्थितियों पर निर्भर करती है। भारतीय सन्दर्भों में यह कहा जा सकता है कि भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। यही कारण है कि यहाँ शिक्षा की व्यवस्था में 'भाषा' का स्थान 'त्रि-भाषा' रूप में समक्ष आया। यद्यपि यह 'त्रि-भाषा सूत्र' स्वतंत्रतापूर्व की स्थितियों से ही व्यावहारिक रूप में रहा है तथापि इसका स्पष्टोल्लेख अथवा स्वरूप का निर्धारण राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) के प्रतिवेदन, जिसका उल्लेख किया जा चुका है, पर आधारित 1968 में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' के द्वारा निर्धारित किया गया, जिसका अनुमोदन पुन: 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' 1986 ने किया। भाषा-शिक्षण विधा भी इससे प्रभावित हुई। इसका सर्वाधिक प्रभाव संस्कृत-शिक्षा पर पड़ा।

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में संस्कृत-शिक्षण का स्वरूप

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में 'संस्कृत' का शिक्षण प्राय: एक प्राचीन, सांस्कृतिक, शास्त्रीय भाषा (ए क्लासिकल लैंग्वेज) के रूप में किया जा रहा है। इसका सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तथा

शिक्षाविधि का निर्धारण इसी आधार पर हुआ है।

इस संदर्भ में दी कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी ऑफ करेन्ट इंग्लिश के अनुसार 'क्लासिकल' शब्द से अभिप्राय है– ऑफ एन्सिएंट ग्रीक और ला एन लिटरेचर और आर्ट

- (ऑफ लैंग्वेज) हैविंग द फार्म यूज्ड बाई दी एंसिएंट स्टैण्डर्ड ऑथर्स (क्लासिकल ला न क्लासिकल हीब्रू)
- बेस्ट ऑन दी स्टडी ऑफ एंसिएंट ग्रीक एंड ला न (ए क्लासिकल एडुका ऑन)

स्पष्ट है कि ये परिभाषाएँ पाश्चात्य संदर्भों में हैं। भारतीय संदर्भों में संस्कृत एक प्राचीन भाषा होते हुए भी प्रयोजन की दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी एवं अपरिहार्य भाषा है।

सन् 1987-88 में हिमाचल प्रदेश के सांसद नारायणचंद्र पाराशर के द्वारा संसद में (संदर्भ सं-6329) के अन्तर्गत संस्कृत की भाषिक स्थिति के बारे में पूछे गए प्रश्न कि ''संस्कृत आधुनिक भाषा है या प्राचीन भाषा?'' के प्रत्युत्तर में तत्कालीन शिक्षा राज्यमंत्री श्री एल.पी. शाही ने लिखित उत्तर दिया था कि *संस्कृतस्य प्राचीनताया: दृष्ट्या सा प्राचीन भाषा, वर्तमानोपयोगिताया: दृष्ट्या सा आधुनिक भाषा च* इति।

स्पष्ट है कि किसी भी भाषा के स्वरूप का निर्धारण उसके प्रयोग पर आधारित है। इस प्रयोग के आयामों का आधार समाज में की जाने वाली उसकी अपेक्षाओं से है। शिक्षा-विधि का निर्धारण भी इन्हीं अपेक्षाओं की दृष्टि से किया जाता है ताकि उन्हें पूर्ण किया जा सके। संस्कृत के संदर्भ कहा जा सकता है कि स्वतंत्र भारत में इससे अनेक अपेक्षाएँ की गईं। संस्कृत आयोग (1956-57) के लिए भारत में संस्कृत की स्थिति, आवश्यकता, भविष्य आदि एक अहम् प्रश्न था। आयोग के प्रतिवेदन के चतुर्थ अध्याय में 'संस्कृत और स्वतंत्र भारत की आकांक्षाएँ' के अन्तर्गत आयोग का मानना है कि ''उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही, जब यूरोपीय मानस के सम्पर्क के फलस्वरूप भारतीय चेतना के पुनर्जागरण का प्रारंभ हुआ, संस्कृत की महत्ता भारतवासियों के बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन में एक नये रूप में पुन: स्थापित हो गई। ...संस्कृत को विश्व के संदर्भ में एक नई प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। ...नए प्रबुद्ध वर्ग में संस्कृत के प्रति एक नई रुचि उत्पन्न हुई। ...अभिलाशा थी कि भारतीय सभ्यता के स्थाई एवं सार्वभौमिक तत्त्वों को यूरोपीय चिन्तन एवं विज्ञान के साथ संश्लिष्ट किया जाए। ...प्रश्न संस्कृत को पुनर्जीवित करने का नहीं था, केवल उसके अध्ययन के आधुनिकीकरण का प्रयास करना था। इस

संदर्भ में आयोग के कुछ प्रमुख कथनों को निम्न रूप में देख सकते है :

आयोग की स्वीकृति है कि -

- संस्कृत भारतवासियों के सामान्य विश्वास एवं राष्ट्र-गौरव का प्रतीक है।
- 'इण्डिया' के संस्कृत नाम 'भारत' को सरकारी मान्यता प्राप्त है।
- भारत का आदर्शवाक्य 'सत्यमेव जयते' उपनिषदों से लिया गया एक उद्धरण है।
- भारत के राष्ट्रगान की भाषा नब्बे प्रतिशत संस्कृत और दस प्रतिशत संस्कृत मूलक है। अत: समस्त भारतवासी इसे सहज रूप से समझ लेते हैं।
- भारत सरकार ने 'श्री' और 'श्रीमती' के संबोधन को राजकीय रूप से स्वीकार किया है।
- आकाशवाणी का निदेशक सिद्धांत एवं आदर्श वाक्य संस्कृत का कथन 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' है जिसका अर्थ है, 'अधिकांश लोगों के लिए हितकारी एवं सुखदायक'।
- जीवन बीमा निगम का आदर्श वाक्य 'योगक्षेमं वहाम्यहं' भगवद्गीता का उद्धरण है जिसका अर्थ है– 'मैं सुलभ प्राप्ति एवं सुरक्षा का दायित्व लेता हूँ'।
- लोकसभा का आदर्शवाक्य 'धर्मचक्र प्रवर्तनाय'
- भारतीय नौ सेना का आदर्शवाक्य 'शं नो वरुण:' संस्कृत के शब्द हैं।
- अधिकांश राजकीय विभागों, विद्यालयों में अनेक अवसरों पर संस्कृत का प्रयोग क्रमश: बढ़ रहा है, जो हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं का द्योतक है।

स्पष्ट है कि राष्ट्रगीत एवं राष्ट्रगान के प्रतिदिन के गायन, कक्षा में विभिन्न विषयों के अध्ययन के अन्तर्गत संस्कृत तथा संस्कृतनिष्ठ शब्दों के उच्चारण, पाठ्य एवं पाठ्यसहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थी संस्कृत भाषा एवं इसके प्रयोग से आरंभिक कक्षाओं से ही परिचित हैं।

संस्कृत : भारतीय सभ्यता की अभिव्यक्ति की भाषा

संस्कृत को विश्व की प्राचीनतम भाषा और आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान का भण्डार माना जाता है। यह मानव जाति, विशेषरूप से भारत के लिए पोषक भाषा के रूप में महत्वपूर्ण है। एक ओर यह शब्दों और सूक्तियों का भण्डार प्रदान करती है जो आत्म-अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है तो दूसरी ओर 'संस्कृत साहित्य' मानसिक और आध्यात्मिक ज्ञान

का भण्डार है। वैदिककाल से आजतक चार हज़ार वर्षों से भारतीय सभ्यता की अभिव्यक्ति का माध्यम 'संस्कृत' ही रही है।

संस्कृत : एक गतिशील भाषा

'संस्कृत' में असंख्य ऐसे शब्दों की रचना संभव है जो सूक्ष्मभेद तथा अर्थभेद को पूर्णत: स्पष्ट तथा उपयुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकते हैं। भाषा की यह क्षमता संस्कृत को वर्तमान समय की वैज्ञानिक, तकनीकी व बाज़ार संबंधी विकास क्रियाओं की अभिव्यक्ति के अनुकूल बना सकती है।

आधुनिक भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में संस्कृत संबंधी महत्वपूर्ण प्रावधानों के आधार – शाब्दिक रूप से 'संस्कृत का अर्थ होता है-तैयार, श्रेष्ठ, शुद्ध, परिष्कृत इत्यादि। यह अलग बात है कि 'देववाणी' कहकर अज्ञानतावश इसे केवल पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड और सांस्कृतिक भाषा बनाकर पारलौकिक दर्जा दे दिया गया और परिणामस्वरूप इसे अवैज्ञानिक भी माना जाने लगा। तथ्य तो यह है कि संपूर्ण संस्कृत वाङ्मय का मात्र पाँच से सात प्रतिशत साहित्य ही इस तरह का है। वङ्दर्शनों को जाने बिना हम भारतीय संस्कृति के मूल आधारों को नहीं जान सकते। संस्कृत कई रूपों में एक साक्षी विरासत मानी जा सकती है, इसको स्थानीयता, जातियता से जोड़कर देखना उचित नहीं होगा क्योंकि इसके सरोकार इतने व्यापक है कि यह साहित्य, पर्यावरण, शिक्षा, ज्ञान, मानवाधिकार सहित तमाम तत्त्वों को समेटे अंतर्रानुशासन (इण्टर डिसिप्लिनरी) संदर्भ रखता है। तभी 1968 और 1986 की शिक्षानीतियों में स्पष्ट रूप से संस्कृत के अध्ययन के महत्व को स्वीकारते हुए देश की सांस्कृतिक विरासत व प्राचीन ज्ञान को आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए संस्कृत की शिक्षा को आवश्यक माना गया।

पं. जवाहर लाल नेहरू ने भी कही कहा था कि- *'अगर मुझसे पूछा जाए कि भारत का सबसे बड़ा खजाना क्या है और श्रेष्ठतम विरासत क्या है तो असंदिग्ध रूप से यही कहूँगा कि संस्कृत भाषा और साहित्य और जो कुछ उसमें है, यह उत्कृष्ट विरासत है और जब तक यह जीवित है, हमारे समाज के जीवन को प्रभावित करती है, तब तक भारत की मेधा अक्षुण बनी रहेगी।'*

इस संदर्भ में दो अत्यंत स्पष्ट निहितार्थ है:– पहला निहितार्थ यह है कि संस्कृत-शिक्षण के विकास की प्रक्रिया एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया है अर्थात् यह प्रारंभिक कक्षा से आरंभ होकर (चाहे वह जिस भी कक्षा से आरंभ की जाए) माध्यमिक स्तर से गुजरती हुई

उचस्तरीय संस्कृत के प्रति अग्रसर हो। इस उच्चस्तर पर अनेक धाराएँ हैं, जिनमें ललित साहित्य केवल एक धारा है। प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से शोध-कार्य में संलग्नता इसका मुख्य उद्देश्य है। एतदर्थ विद्यार्थियों को संस्कृत की विशिष्ट संरचना को समझते हुए भाषिक विश्लेषण के लिए तैयार करना है। अत: संस्कृत शिक्षण के दो स्पष्ट पाठ्यक्रम दृष्टिगत होते हैं-एक, भाषिक एवं द्वितीय, साहित्यिक।

दूसरा निहितार्थ है– संस्कृत का स्वरूप केवल एक प्राचीन भाषा के रूप तक ही सीमित नहीं है। जहाँ यह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भूमिका तैयार करती है, वहीं यह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिए शब्द-निमार्ण की शक्ति को भी समेटे हुए है।

संस्कृत भाषा में शब्द (पद) निर्माण की अपरिमित क्षमता है, इसका अनुमान गुणक रूप में समझा जा सकता है।

पाणिनी द्वारा प्राय: 1700 क्रिया धातुओं का उल्लेख किया गया है। बीस के लगभग सर्वसुलभ उपसर्ग माने गए हैं, जिसमें से प्रत्येक को हर एक धातु के पूर्व जोड़ने से एक नए शब्द की उपलब्धि हो जाती है। दो अथवा तीन उपसर्गों को भी जोड़ा जा सकता है।

एक ही समय केवल दो उपसर्गों को चुनने से, 20x20 = 400 उपसर्ग प्रत्येक धातु के साथ जोड़े जा सकते हैं। इस प्रकार चार सौ नवीन शब्द/पद बनाए जा सकते हैं। 1700 धातुओं द्वारा इस प्रकार 1700 x 400 = 680000 शब्द/पद बनाए जा सकते हैं। इन शब्दों में से प्रत्येक के साथ प्रत्यय भी लगाए जा सकते हैं। दस प्रत्यय तो सहज उपलब्ध हैं। इन शब्दों में से प्रत्येक को किसी अन्य एक अथवा दो शब्दों से संयुक्त भी किया जा सकता है। केवल दो शब्दों के संयुक्त रूप द्वारा ही उपरोक्त सात लाख संयुक्तों में से प्रत्येक के सौ जोड़े बनाए जा सकते है। इस प्रकार, लगभग सात करोड़ शब्दों का बन जाना संस्कृत में शब्द/पदनिर्माण की अपरिमित क्षमता का परिचायक है।

इसी प्रकार, समान विचारों के समूह के लिए ध्वनिगत संबद्ध शब्द का पाया जाना भी संस्कृत की एक अन्य भाषिक विशिष्टता माना जा सकता है।

यथा-अंग्रेजी में बिल, एक्ट, लेजिस्लेचर, कॉनस्ट्यूशन आदि शब्द एक विचारसमूह का होते हुए भी ध्वनिगत साम्य नहीं रखते जबकि इनके लिए संस्कृत में एक ही धातु 'धा' के साथ 'वि' उपसर्ग लगाने से सौ से भी अधिक वैधानिक परिभाषिक शब्द बनाए जा सकते हैं। उक्त उदाहरण में 'विधि', 'विधेयक', 'विधान', 'संविधान' आदि अभिव्यंजना के विविध रूपों की असीम क्षमता इसका परिचायक है।

संस्कृत भाषा के गतिशीलता वैशिष्ट्य के कारण

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) 'संस्कृत' को एक 'आधुनिक भाषा' के रूप में शिक्षण की चर्चा करती है।

- आधुनिक भाषाओं की जननी व पोषिका के संदर्भ में 'मातृभाषा' आदि के स्वरूप को समझने हेतु सम्मिलित पाठ्यक्रम के माध्यम से शब्द-निर्माण के उद्देश्यों को लेकर चलने वाली पद्धति की आवश्यकता है, तो आधुनिक भाषा के रूप में इसे एक 'संप्रेषण के माध्यम' के रूप में स्वीकार करते हुए -
- भाषा की संरचना को समझने,
- व्यवहार में ढालने हेतु चारों कौशलों को पाने,
- 'सामासिक संस्कृति' के प्रसार, नवीन शब्दावली के निर्माण आदि हेतु 'नवीन संस्कृत शिक्षण की पद्धति' को महत्व देना अनिवार्य है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में संस्कृत शिक्षण की आवश्यकता के संबंध में कहा गया है कि *संस्कृत भाषा और साहित्य का राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से बहुत महत्व है। संस्कृत साहित्य की मूल चेतना (विविधता को बनाए रखते हुए) भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने की है। भारतवर्ष में क्षेत्रीय विषमताओं के होने पर भी जिन तत्त्वों ने इस देश को एकसूत्र में बांध रखा है उनमें संस्कृत भाषा तथा इसका साहित्य प्रमुख है*।

भारत की भाषिक विविधता एक जटिल चुनौती है परन्तु भाषा-शिक्षण के अन्तर्गत इससे कई प्रकार के अवसर भी प्राप्त होते हैं। अनेक भाषिक और सामाजिक भाषिक विशेषताएँ ऐसी हैं जो सभी भाषाओं में समान रूप से पायी जाती हैं। अत: बहुभाषिकता आवश्यक है। बहुभाषिकता और राष्ट्रीय सद्भाव के प्रसार के लिए प्रस्तुत संदर्भ में कुछ दिशा-निर्देश बताए गए हैं:-

- भाषा-शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए।
- बच्चों की घरेलू भाषाएँ विद्यालय में शिक्षण का माध्यम हो।
- गैर-हिन्दी राज्यों में, बच्चे हिन्दी सीखते हैं। हिन्दी प्रदेशों के मामले में, बच्चे वह भाषा सीखें, जो उस इलाके में नहीं बोली जाती है। इन भाषाओं के अलावा आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में 'संस्कृत' का अध्ययन भी शुरू किया जा सकता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) का मत है कि संस्कृत-शिक्षण के अधिगम का विस्तार किया जाना चाहिए। तदनुसार, *आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में वरिष्ठ माध्यमिक*

स्तर पर संस्कृत-शिक्षण सामान्यत: कला वर्ग तक सीमित हो गया है। फलत: वाणिज्य और विज्ञान के विद्यार्थी संस्कृत ज्ञान-विज्ञान की परम्परा से वंचित रह जाते हैं। अत: आवश्यक है कि सभी भारतीय विद्यार्थियों को संस्कृत की व्यापक वैज्ञानिक चिंतन परम्परा से परिचित कराया जाए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह तथ्य स्वीकार कर लिया गया कि भारतीय संघ की मान्यताप्राप्त आधुनिक भाषाओं को बाधारहित विकास की सुविधा प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु यह अनुभव किया जा रहा है कि हमारी आधुनिक भारतीय भाषाएँ गम्भीर दार्शनिक विचारों की प्रस्तुति हेतु पूर्णरूप से विकसित नहीं है। सभी भाषाओं में उचित शब्दों का अभाव अखिल भारतीय आधार पर प्रत्यक्ष रूप से 'संस्कृत' धातुओं तथा उनसे निर्मित नवीन शब्दों द्वारा पूरा किया जा सकता है। अखिल भारतीय एकता के उद्देश्य से हमें तकनीकी शब्दों की किसी एकरूप व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए। ऐसा तंत्र केवल 'संस्कृत भाषा' से ही निर्मित हो सकता है। श्री सी.डी. देशमुख ने इसी साक्ष्य के रूप में कहा था कि *संस्कृत में नए शब्दों की रचना का अद्‌भुत सामर्थ्य है*।

संस्कृत : संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय संविधान ने संस्कृत को एक विशिष्ट दायित्व सौंपा है। अनुच्छेद 351 के अनुसार *संघ का कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में आठवीं सूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे*। निहितार्थ यह है कि संविधान के अनुसार –

- एक ऐसी भाषा का विकास करने की आवश्यकता है जो भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और 'संस्कृत' इस अपेक्षा की अभिपूर्ति कर सकती है।
- नवीन ज्ञान-विज्ञान के शब्द भण्डार की समृद्धि के लिए मुख्यत: 'संस्कृत' से 'शब्द ग्रहण' करने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान के अन्तर्गत 'संस्कृत' की आवश्यकता का उल्लेख निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है–

उद्देशिका :

- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय।
- विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता।
- प्रतिष्ठा और अवसर की समता।
- व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता अर्थात् भावात्मक विकास।
- राष्ट्र की प्रभुता और अखण्डता। (यह प्रश्न प्रत्यक्षत: 'संस्कृत' के अध्ययन से जुड़ा है।)

अनुच्छेद – 19

- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- वृत्ति, उपजीविका, व्यापार आदि की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद – 25

- धर्मसंबंधी स्वतंत्रता।
  भाग–4 नैतिक आचरण की अपेक्षा।
- सामूहिकता।

अनुच्छेद – 43

- शिष्ट जीवन एवं सांस्कृतिक अवसर।

अनुच्छेद – 48 (क) – पर्यावरण संरक्षण

अनुच्छेद – 49

- राष्ट्रीय स्तर के स्मारकों, संस्थाओं और वस्तुओं का संरक्षण।

अनुच्छेद – 51

क. उच्च आदर्शों (मौलिक कर्त्तव्य), राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, प्रभुत्ता।

ख. समरसता/समान भ्रातृत्व का विकास

च. सामासिक संस्कृति

छ. प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण प्राणिमात्र के प्रति दया।

ज. मानववाद/वैज्ञानिक दृष्टिकोण -तर्क, दर्शन

उपर्युक्त सभी संवैधानिक तत्वों की प्राप्ति में संस्कृत की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। ध्यातव्य है कि संस्कृत संविधान द्वारा मान्यताप्राप्त भाषाओं में से एक है। इसे एक आधुनिक भाषा के रूप में देखे जाने का प्रश्न महत्त्वपूर्ण बन चुका है। साहित्य अकादमी द्वारा मान्य आधुनिक भारतीय साहित्यिक भाषाओं की सूची में 'संस्कृत' को भी स्थान प्राप्त है। जबकि उक्त सूची में शास्त्रीय भाषाएँ प्राय: सम्मिलित नहीं हैं।

संस्कृत को आधुनिक भारतीय भाषा संवर्ग में माने जाने के पीछे का तर्क है कि-

- आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि जैसे वार्ता प्रसार माध्यमों पर समाचार एवं अन्य कार्यक्रम आधुनिक भाषाओं के प्रसारित किए जाते हैं। संस्कृत में भी वार्ता-प्रसार एवं अन्य कार्यक्रम प्रतिदिन प्रसारित किए जाते हैं।
- संस्कृत भाषा एवं साहित्य के शिक्षण हेतु देश में प्राय: तेरह विश्वविद्यालय, पाँच हज़ार संस्कृत पाठशालाएँ, तीन करोड़ विद्यार्थी विद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन कर रहे हैं। साठ से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ नियमित रूप से संस्कृत में प्रकाशित होती हैं। साठ देशों के दो सौ पचास विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन किया जाता है। तीन ऐसे संस्कृतग्राम हैं, जहाँ दो हज़ार संस्कृतगृह के निवासी संस्कृत में अपनी भाषिकचर्या संपन्न करते हैं।
- प्रतिवर्ष हज़ारों पुस्तकें संस्कृत साहित्य में प्रकाशित होती हैं। लाखों लोग प्रतिदिन जीवन में इसका व्यवहार करते हैं। अंग्रेज़ी और हिन्दी भाषा के बाद भारत में संस्कृत के विद्यार्थियों की संख्या सर्वाधिक है। सौ से अधिक शोध-संस्थानों में संस्कृत विज्ञान संबंधी शोधकार्य चल रहे हैं। कम्प्यूटर कार्य के लिए संस्कृत को सहज एवं उपयुक्त वैज्ञानिक भाषा के रूप में स्वीकार्यता प्राप्त है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में धारा प्रवाह संस्कृत बोलने वाले व्यक्तियों की संख्या 49 हजार 736 है।

संस्कृत : अधिकांश भारतीय भाषाओं की पूरक भाषा

- 'संस्कृत-स्वरविज्ञान' अतिवैज्ञानिक है तथा अधिकांश भारतीय भाषाओं के उच्चारण पर अधिकार प्राप्त करने का इसे उचित साधन माना जाता है।
- अधिकांश भारतीय भाषाओं की वाक्यगत संरचना 'संस्कृत' से ली गई अथवा उससे प्रभावित मानी जाती है।

- जैसा कि संकेत दिया जा चुका है कि संस्कृत में अर्थ-विस्तार के साथ नवीन शब्दों की रचना की क्षमता है। अत: यह माना जा सकता है कि 'संस्कृत' के माध्यम से आधुनिक विश्व की आवश्यकता के अनुसार रचना संभव है।
- संस्कृत साहित्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का आदि स्रोत है। इस दृष्टि से संस्कृत का अध्ययन लोगों में क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य को समझने के लिए सूक्ष्म दृष्टि विकसित कर सकेगा।
- वैदिक साहित्य में धर्म, दर्शन, ज्योतिष, इतिहास के अतिरिक्त उच्चकोटि का साहित्य, काव्य तथा भारतीय आदिसभ्यता का सांस्कृतिक इतिहास भी है। अत: इस दृष्टि से संस्कृत के भाषिक अध्ययन को ही तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, तुलनात्मक धर्म और तुलनात्मक साहित्य का आधार माना जा सकता है।

ये सभी इस तथ्य के द्योतक हैं कि 'संस्कृत-शिक्षण' के भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संस्कृत-शिक्षण के रूप भी भिन्न-भिन्न हैं-

- 'सांस्कृतिक-भाषा' के रूप में प्राचीन संस्कृति का ज्ञान आदि प्रमुख हैं। एतदर्थ आदर्श, मूल्य, वस्त्र, आवास, शैली आदि के परिचयात्मक रूप में साहित्य, ऐतिहासिक शिलालेखों आदि का विशेष महत्व है। अत: शिक्षण का रूप भी इसी से जुड़ा है।
- प्राचीन भाषा के रूप में भाषा-वैज्ञानिक उद्देश्य प्रमुख है। अत: शिक्षण का रूप भाषा के विकास के संदर्भ में 'भाषिक विश्लेषण' तत्व अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।
- प्राचीन साहित्यिक भाषा के रूप में साहित्य के परिचय एवं रूप आदि को ध्यान में रखते हुए साहित्यिक अंशों का उल्लेख आदि महत्वपूर्ण है।

स्वीकृत तथ्य है कि 'समस्त भारत की, विषेशत: उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत की विभिन्न भाषाओं के प्रतिपाद्य विषयों का मूलस्रोत एकमात्र संस्कृत भाषा ही रही है। यदि इन प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं में से संस्कृत भाषा के तत्त्व निकाल दिए जाएं तो ये सारी भाषाएँ शुष्क हो जाएंगी। इस प्रकार, संस्कृत के द्वारा समान सांस्कृतिक परंपरा में पली हुई सभी भाषाएँ एक-दूसरे से पूर्णत: संबद्ध होकर चली आ रही हैं।

उपर्युक्त संपूर्ण परिप्रेक्ष्य से जो बात स्पष्ट रूप से उभरती है, वह यह है कि *स्वतंत्र भारत में संस्कृत का स्थान एक बहु-आयामी उद्देश्यों से परिपूर्ण है। इसे केवल 'चयनित साहित्यिक अंशों' तक के पठन-पाठन तक सीमित नहीं किया जा सकता है।* यह केवल साहित्यिक भाषा ही नहीं है। इसके शिक्षण को केवल साहित्य-शिक्षण तक सीमित नहीं

किया जा सकता। यह एक भाषा है, अत: इसे एक भाषा के रूप में ही पढ़ाया जाना चाहिए। भाषा-शिक्षण के सिद्धांतों के अनुकूल ही पढ़ाना अपेक्षित है। भाषा, चाहे किसी भी रूप में पढ़ाई जाए (-मातृभाषा, विदेशी भाषा, सांस्कृतिक भाषा अथवा कोई अन्य रूप) उसका मूल प्रयोजन सम्प्रेषणीयता है, विभिन्न संदर्भों में उस भाषा को प्रयोग के योग्य बनाना है। अनुवाद भी एक प्रयोजन है, केवल एक प्रयोजन या उद्देश्य नहीं। संस्कृत-शिक्षण के संदर्भ में यह केवल एक प्रयोजन बनकर 'संस्कृत-शिक्षण' तक सीमित-सा हो गया। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशिष्ट संरचना होती है। यह संरचना मूलत: चार स्तरों पर स्पष्टत: दिखाई देती है– ध्वनि, शब्द, पद तथा वाक्य। ये सभी रूप पुन: मौखिक एवं लिखित रूपों से सम्बद्ध हैं। अत: भाषा-शिक्षण-अधिगम से अभिप्राय है कि किसी भी विद्यार्थी को लक्ष्य भाषा के विभिन्न संरचनात्मक रूपों से परिचित कराना।

भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में भाषा-नीति की चर्चा करते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भाषाओं के विभिन्न समूहों में 'संस्कृत' को चतुर्थ समूह-सांस्कृतिक भाषाओं की श्रेणी में रखा है।

इस आयोग ने अपने अनुमोदन में संस्कृत-शिक्षण-प्रक्रिया पर विचार करते हुए इसे अधिकाधिक व्यावहारिक बनाने का प्रस्ताव दिया है।

अत: भाषा पठन-पाठन (चाहे द्वितीय भाषा का हो अथवा तृतीय भाषा का), से अभिप्राय है, भाषा को भाषा के रूप (यानि भाषिक तत्वों के रूप) में पढ़ाना ताकि उस पर अधिकार होने से अपेक्षित भिन्न प्रयोजनों को साधा जा सके।

अत: स्पष्ट है कि संस्कृत-शिक्षण के आयाम की व्यापकता देखते हुए इसे भाषा के रूप में लेते हुए इसके शिक्षण को भाषिक तत्त्वों के रूप में लिया जाए। प्रश्न प्राचीन अथवा आधुनिक भाषा का नहीं अपितु भाषा को भाषा के रूप में पढ़ाने का है।

संस्कृत शिक्षण का स्वरूप : प्रयोजन के संदर्भ में

हमारे देश में लगभग ग्यारह सौ केन्द्रीय विद्यालय हैं, जिनमें अस्सी हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं। इनमें से प्राय: सत्रह हजार विद्यार्थी तीसरी भाषा के रूप में छठी से आठवीं तक एक विदेशी भाषा (जर्मन) पढ़ते हैं-प्रश्न है कि क्या यह हमारी शिक्षा-व्यवस्था में उस राष्ट्रीय भाषा नीति के विरुद्ध नहीं है, जिसकी अनुशंसा राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) 1964-66 के प्रतिवेदन में की गई थी और पुन: उसे 1986 की शिक्षानीति और 2005 की शिक्षा पाठ्यचर्या में भी दोहराया गया। जिस त्रिभाषा सूत्र को वर्त्तमान में भारतीय विद्यालयी

शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत भाषा-नीति के रूप में प्रायः मान्यतापूर्वक स्वीकार किया गया है, उसके अंतर्गत स्पष्ट रूप से उल्लिखित है-एक मातृभाषा, दूसरी अंग्रेजी, जो शेष दुनियां से जुड़ने को माध्यम है ओर तीसरी कोई और प्रादेशिक भाषा, जैसे-उत्तर भारत के लिए कोई दक्षिण की और दक्षिण भारत के लिए हिन्दी। एक अनुशंसा यह भी थी कि राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को बढ़ावा दिया जाए। पर नीतिगत रूप से सामान्य भारतीय मानस को यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा कि आखिर किन कारणों से इस भाषासूत्र में दो विदेशी भाषाएँ आ गईं। ऐसा तब, जबकि महात्मागांधी, टैगोर से लेकर विश्व भर के शिक्षाविद् शिक्षा और समझ के लिए अपनी भाषाओं की बात करते रहे हैं।

यद्यपि गाँधी जी का मानना था कि विदेशी भाषा खिड़की की भाँति है और ज्ञान जहाँ से भी आ सकता है, उसका स्वागत किया जाना चाहिए। ज्ञान और समझ के बारे में अवश्य सहमत भी हुआ जाना चाहिए कि जितनी भाषाएँ सीखी जाए, ज्ञान उतना ही विस्तृत होगा।

यह भी ठीक है भाषा चाहे स्वदेशी हो अथवा विदेशी, उसका सीखना-सिखाना अवश्य होना चाहिए पर छठी से आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों पर एक साथ दो विदेशी भाषाओं के सीखने का आनावश्यक बोझ-कदाचित तर्कसंगत नहीं माना जा सकता। प्रो. यशपाल ने भी 1992 में 'बस्ते का बोझ' की अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट में किताबों और परीक्षा के दबाव की बात कही है, उसमें भी यदि देखा जाए तो जितना वजन भारतीय परिस्थितियों में अंग्रेजी सिखाने का होता है उतना किसी और विषय का नहीं। प्रायः हिन्दीभाषी प्रदेशों के संदर्भ में तो यह बात प्रमाणपूर्वक सिद्ध है।

यदि हम भाषा की उपयोगिता और विद्यार्थी के मानसिक-शैक्षिक विकास का पक्ष भी देखें तो पता चलेगा कि दैनिक जीवन में उपयोग में न आनेवाली भाषाएँ प्रायः अप्रासंगिक हो जाती है। भाषा हम समाज से सीखते हैं और समाज ही भाषायी व्यक्तित्व के विकास में सहायक भी होता है। इस रूप में उत्तर और दक्षिण भारत की मातृभाषाएँ प्रायः अपने शब्दों के आदान-प्रदान को लेकर संस्कृत के समीप ठहरती है, अतः इसका अधिगम किसी भी विदेशी भाषा के अधिगम की अपेक्षा सरल, सहज और अपेक्षानुकूल है। माना जा सकता है कि संस्कृत का पठन-पाठन भविष्य में देश की सभी भाषाओं के साथ जुड़ने का आधार बनेगा।

भारत के पूर्व कैबिनेट सचिव श्री टी.आर. सुब्रहमण्यम ने अपनी पुस्तक 'द टर्निंग प्वाइंट' में लिखा है कि उनकी आरंभिक शिक्षा बांग्लाभाषा में हुई और फिर माध्यमिक

शिक्षा में संस्कृत तदुपरांत उच्च शिक्षा में अंग्रेजी माध्यम। इस पृष्ठभूमि में उन्होंने जब उत्तर प्रदेश में एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्य करना आरंभ किया तो हिन्दी सीखने में उन्हें कोई समस्या नहीं आयी। बहुभाषिक भारतीय समाज में हिन्दी की संपर्क भाषा भूमिका की सोच तो हमारे नीति-नियंताओं की थी। आशय यह कि संस्कृत सहित सभी भारतीय भाषाओं को इस प्रकार आगे बढ़ाया जाए कि सार्वदेशिक स्तर पर शनैः शनैः अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में विकसित कर लिया जाये।

हमें ध्यान रखना होगा कि न केवल संस्कृत अपितु कोई भी भाषा केवल वर्णों और शब्दों की यांत्रिक व्यवस्था मात्र नहीं होती अपितु यह अपने साथ सारे विचार लाती है, विश्व के विचार दर्शन को समझने का दृष्टिकोण विकसित करती है पर भाषा की इस उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए यह व्यवस्था भी आवश्यक है कि हम पहले अपनी संस्कृति को जानने की क्षमता अपने विद्यार्थियों में विकसित करें और इसके लिए पहले स्वदेशी भाषाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करनी होगी फिर विदेशी भाषाओं की। वैसे भी पठन-पाठन का मनोवैज्ञानिक उपागम 'सरल से कठिन' और 'ज्ञात से अज्ञात' की ओर जानेवाली अधिगम दृष्टिकोणों को ही तर्कसंगत मानता है।

किसी भी भाषा का शिक्षण शिक्षण-अधिगम सिद्धांतों के साथ-साथ मूलतः उस भाषा की प्रकृति अर्थात् उसके संरचनात्मक स्वरूप व उस भाषा से सिद्ध किए जाने वाले प्रयोजनों पर ही निर्भर करता है। 'संस्कृत शिक्षण-अधिगम' की प्रक्रिया इसका अपवाद नहीं है। भारतीय संदर्भों में संस्कृत का शिक्षण 10+2+3 शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत यद्यपि एक तृतीय भाषा के रूप में किया जाता है, तथापि विद्यार्थियों के लिए यह पूर्णतः अपरिचित भाषा नहीं है। भारतीय भाषाओं की आधारभाषा के रूप में विद्यार्थी प्रायः इसकी शब्दावली से परिचित हैं एवमेव इसकी वाक्य संरचना के मूल क्रम से परिचित हैं। विद्यार्थी इसकी संस्कृति के ही अंगभूत है। अतः उनके लिए यह भाषा अन्य विदेशी भाषाओं की भांति 'अन्य भाषा' न होकर 'स्वभाषा' है। तथापि दैनिक जीवन में अन्य भाषाओं की भांति व्यवहृत न होने के कारण तथा सुव्यवस्थित सुसंगठित व्याकरणात्मक नियमों से बद्ध होने के कारण इसके शिक्षण में अधिकाधिक अभ्यास की आवश्यकता है। यह अपेक्षा है कि कक्षा में इसको अधिकाधिक उपयोग करके एक ऐसे संस्कृतमय वातावरण का निर्माण किया जाए कि विद्यार्थी इसे सुगमता पूर्वक अर्जित कर सकें। यह भी ध्यातव्य है कि व्यावहारिक रूप में प्रायः इसके साहित्यिक रूप को ही प्रमुखता दी गई है जबकि पूर्व कथनानुसार, संवैधानिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ इससे अनेक अपेक्षाएँ

की गईं हैं। अत: इसके शिक्षण में एक अत्यधिक वैविध्य की अपेक्षा है।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि एक भाषा के रूप में इसके अध्ययन-अध्यापन के लिए चारों भाषाई कौशलों में निपुणता प्राप्त करवाना इसके शिक्षण का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। यद्यपि, सामान्यत: इसे एक प्राचीन भाषा के रूप में परिगणित किया जाता है तथापि इससे की जाने वाली अपेक्षाएँ व अनेक अवसरों पर किया जाने वाला इसका प्रयोग इसे इस दायरे तक सीमित नहीं करता। विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) ने इसे एक 'आधुनिक भाषा' के रूप में देखने की बात कही है, अत: तदनुसार इसके अध्ययन-अध्यापन में एक 'विशिष्ट परिवर्तन' की अपेक्षा बनी हुई है।

संदर्भ:

दैनिक जागरण- नवम्बर 22, 2014 श्री प्रेमपाल शर्मा का लेख

पाण्डेय, इन्दिराचरण-'संस्कृत शिक्षण समीक्षण'

पियाजे: (1951) उद्धत: जेम्स ब्रिटेन-'भाषा तथा अधिगम'

वर्मा, शीवेन्द्र के.- 'भाषा विज्ञान की अधुनातन प्रवृत्तियाँ और भाषा शिक्षण

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005

भारत का संविधान

भारत का संविधान-(प्रकाशन विभाग), भारत सरकार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (1968)

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, (1964-66)

राष्ट्रीय शिक्षानीति, 1986 (मई 1986) मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, (शिक्षा विभाग) नई दिल्ली।

राजगापालन, न.वी.-'भाषा शिक्षण तथा भाषा विज्ञान'

शास्त्री, चम्मूकृष्ण: ज्ञाने धर्म: उत प्रयोगे?

श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ-'भाषाशिक्षण' (दो शब्द) द्वितीय संस्करण

संस्कृत आयोग, (1956-57)

सफाया, रधुनाथ-'संस्कृत शिक्षण'

सलूजा, चाँदकिरण: शिक्षा : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

श्रीलंका की स्कूली शिक्षा में बदलाव के रुझान

वेटुकुरी पी.एस. राजू*

सारांश

श्रीलंका का मानव विकास सूचकांक दक्षिण एशिया में उच्च है। इस तथ्य के बावजूद शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय असमानताएं विद्यमान हैं। इस कारण स्कूलों और अन्य संस्थानों में शिक्षा के रूप में सुधार इस द्वीपीय राष्ट्र में मध्यमान दर्जे का विकास संपूर्ण रूपांतरण की संभावना को सीमित करता है। इस आलेख में उल्लेखित है कि लंबे समय से आंतरिक संघर्ष और हिंसा से ग्रस्त होने के बावजूद, अपनी सुशासन व्यवस्था के माध्यम से श्रीलंका पिछले कई दशकों से मुफ्त प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा सहित राज्य संस्थाओं को प्रतिबद्धता से लाभान्वित किया है। आलेख में यह भी विश्लेषित किया गया है कि राष्ट्रीय और क्षेत्रीय असमानताओं, राष्ट्रीय स्कूलों में महिला छात्रों की कम हिस्सेदारी जहां शिक्षा प्रणाली में विशेष रूप से ग्रामीण–शहरी और लैंगिक आधार पर विभाजन है। आलेख के निष्कर्ष यह पाया गया कि स्कूली शिक्षा से उच्च स्तर में प्रवेश करने में छात्रवृत्ति परीक्षा का महत्व है। परंतु इसमें जो छात्रवृत्ति परीक्षा में सिंहली और तमिल छात्रों के उपलब्धि स्तर के बीच असमानताओं और जटिलताओं के सामाजिक विभाजन को रेखांकित किया गया है।

परिचय

श्रीलंका की साक्षरता शैक्षिक नामांकन और शैक्षिक अवसर की समानता में उसकी उपलब्धियों के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है। बेशक, श्रीलंका, वर्ष 2013 में 0.694 के वैश्विक औसत के सापेक्ष 0.715 और दक्षिण एशिया में सबसे ज्यादा मानव विकास सूचकांक वाले देश के रूप में दर्ज है। फिर भी 2013 तक, 2000 से 6.51 प्रतिशत के एक मध्यम सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर्ज होने के बावजूद वहाँ

*न्यूपा, नई दिल्ली

क्षेत्रीय असमानता मौजूद थी। 2010 में 8.60 प्रतिशत की उच्चतम विकास दर का लाभ, 33.3% जनसंख्या विशेष रूप से ग्रामीण गरीबों तक नहीं पहुँचा जो गरीबी, मुख्यत: जातीय युद्ध तथा इसके कारण उत्पन्न विस्थापन और सर्वाजनिक व्यय नीति के सोची-समझी नीति के कारण किए गए परिवर्तन से पीड़ित है। श्रीलंका की वर्तमान शिक्षा प्रणाली विकास के अनेक चरणों से गुजरी है। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में शिक्षा में सुधार हेतु प्रयास आरंभ किए गए जो अनेक क्रमबद्ध विकास के आयामों के बाद वर्तमान स्वरूप में दिखाई पड़ रहा है। यद्यपि प्राथमिक मिडिल और माध्यमिक स्कूल स्तर पर सुधार के कारण नामांकन में वृद्धि और त्याग दर में गिरावट स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है लेकिन इसके साथ-साथ श्रीलंका की शिक्षा प्रणाली में क्षेत्रीय विषमताएं, विशेषकर ग्रामीण नगरीय और लैंगिक विषमताएं विद्यमान रही हैं। ग्रामीण बागवानी और संघर्ष पीड़ित क्षेत्रों में अनेक स्कूलों में मूलभूत सुविधाएं, जैसे- स्कूल भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं, शैक्षिक उपकरण और अनेक सहायक सामग्री का अभाव है। वर्ष 2004 के सुनामी के प्रलय ने अर्थव्यवस्था की मजबूत नींव को हिला दिया था। इससे तटीय क्षेत्र बूरी तरह प्रभावित हुए थे।

शैक्षिक दस्तावेज़, पांडुलिपियां, लेख और रिपोर्ताज श्रीलंका की शिक्षा व्यवस्था का स्पष्ट स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थ, यूनिसेफ रिपोर्ट 2007 में कहा गया है, ''श्रीलंका पिछले पांच दशकों के दौरान मजबूत सुशासन व्यवस्था, सुस्थापित सरकारी संस्थानों और नि:शुल्क प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता से बहुत लाभान्वित हुआ है। श्रीलंका में पिछले दो दशकों के दौरान लंबे आंतरिक संघर्ष के परिणाम स्वरूप और अल्पकालिक वर्ष 2002 में युद्ध विराम (सीज़ फायर) के बावजूद बढ़ती हिंसक घटनाएं प्रमुख चुनौती रहीं। इसके दौरान भी वर्ष 1997 से गुणवत्ता और समता पर केंद्रित व्यापक शैक्षिक सुधार जारी है।''

शैक्षिक सुधार के आयाम

श्रीलंका हिंद महासागर में स्थित एक द्वीप राष्ट्र है। इसकी आबादी 2013 में 21.66 मिलियन थी और आबादी वृद्धि दर 0.89 प्रतिशत रही है। आबादी का घनत्व 329 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। जीवन प्रत्याशा 76 प्रतिशत पुरुष और 72 प्रतिशत महिला है। शिशु मृत्यु दर 9.47 प्रति हजार जीवित जन्म और साक्षरता 91.2 प्रतिशत है जो दक्षिण एशिया में सर्वोच्च है। वस्तुत: श्रीलंका एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था आधारित देश

है जिसमें 84.9 प्रति आबादी गांवों में 15.10 प्रतिशत आबादी नगरों मे और शेष 6.3 प्रतिशत बागवानी क्षेत्र/जंगलों में रहती है।

श्रीलंका की अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में मात्र 20 प्रतिशत कृषि क्षेत्र, 26 प्रतिशत उद्योग क्षेत्र और सर्वाधिक 54 प्रतिशत सेवा क्षेत्र का योगदान है। पिछले 30 वर्षों के दौरान जातीय हिंसा ने आंतरिक क्षेत्रीय व्यापार को अवरूद्ध किया। इसके परिणाम स्वरूप गरीबी बढ़ी, आधारभूत ढांचे को भारी नुकसान पहुंचा और सार्वजनिक वित्ता व्यवस्था कमजोर हुई। एक आकलन के अनुसार आंतरिक संघर्ष के दौरान वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद दर 1.00 से 1.15 प्रतिशत रही। यह तर्क दिया जाता रहा है कि श्रीलंका में 1977 तक आपात प्रतिपूरक नीतियों का अनुपालन किया जाता रहा। परंतु बाद में श्रीलंका न केवल आत्मनिर्भर बना बल्कि उदार अर्थव्यवस्था के तहत निर्यातोन्मुख और बाजारोन्मुख व्यापार की ओर अग्रसर हुआ। प्रमुख आर्थिक सुधारों के साथ, जैसे औद्योगिक विकास कपड़ा और वस्त्र, खाद्य और बेवरेज, संचार, बीमा और बैंकिंग क्षेत्र में प्रगति के कारण शिक्षा क्षेत्र में विशेषकर स्कूल शिक्षा प्रक्रिया के विकास में तेजी आइ और इसके परिणाम स्वरूप श्रीलंका समग्र विकास के पथ पर अग्रसरित हुआ।

शिक्षा नीति

सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा (1948) के अनुच्छेद 26 के प्रति दी पूर्णत: प्रतिबद्धता के साथ लोकतांत्रिक समाजवाद गणराज्य श्रीलंका का संविधान संपूर्ण निरक्षरता उन्मूलन की आवश्यकता और सभी स्तरों की शिक्षा की सार्वभौमिक और समतापूर्ण नागरिक अधिकार का आश्वासन देता है। सरकार की शिक्षा नीति में प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। शैक्षिक अवसरों में विद्यमान विषमताओं के अंतराल को पाटने के लिए सभी निजी और सहायता प्राप्त स्कूलों को सरकारी नियंत्रण के अधीन लाया गया है और नि:शुल्क मध्याह्न भोजन, रियायती यातायात साधन, मुफ्त पाठ्यपुस्तकों तथा वर्दी और छात्रवृत्ति आदि प्रदान की जा रही हैं।

शैक्षिक प्रबंधन

श्रीलंका के मौजूदा शिक्षा प्रणाली के प्रबंधन संघटन में पांच स्तरीय ढांचा है: शिक्षा मंत्रालय, प्रांतीय मंत्रालय– शिक्षा विभाग, क्षेत्रीय शिक्षा अधिकारी, मंडल शिक्षा अधिकारी

और स्कूल। केन्द्रीय मंत्री के अलावा दो गैर कैबिनेट स्तर के मंत्री हैं– (1) उच्च शिक्षा मंत्री और तृतीयक शिक्षा एवं प्रशिक्षण मंत्री। ये दोनों मंत्री अपने–अपने क्षेत्र में केंद्रीय मंत्री की मदद करते हैं। यह प्रबंधन व्यवस्था 1987 में प्रांतीय परिषद प्रणाली की स्थापना के साथ शुरू की गई। शिक्षा मंत्रालय पर कार्यान्वयन निरूपण, नियंत्रण सामान्य शिक्षा का रखरखाव, अध्यापक शिक्षा और तकनीकी शिक्षा की जवाबदेही है। प्रत्येक प्रांत में प्रांतीय शिक्षा मंत्री हैं और उसकी सहायता हेतु प्रांतीय शिक्षा सचिव है। प्रत्येक प्रांत के शिक्षा विभाग का मुखिया प्रांतीय शिक्षा निदेशक होता है। इसके अलावा क्षेत्रीय निदेशकों के अधीन 92 क्षेत्रीय शिक्षा अधिकारी हैं और मंडल निदेशकों के अधीन 297 मंडल शिक्षा अधिकारी हैं। लोक सेवा आयोग, एक स्वायत्त निकाय है जो शिक्षकों और श्रीलंका शिक्षा सेवा के अधिकारियों की भर्ती, प्रोन्नति, स्थानान्तरण और अनुशासन संबंधी मामलों के लिए उत्तरदायी है। विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्च शिक्षा संस्थानों का संचालन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग करता है। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान पाठ्यचर्या विकास और पाठ्यक्रम निर्माण संबंधी कार्य करता है। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग राष्ट्रीय नीति संरचना का प्रस्ताव तैयार करता है। 1970 के दशक से श्रीलंका शैक्षिक रणनीति के निर्माण में पूर्णत: व्यवस्थित और समर्थ रहा है। श्रीलंका ने देश के निरक्षर प्रौढ़ों और युवाओं को साक्षर बनाने हेतु सुव्यवस्थित रूप से कार्य साधक साक्षरता कार्यक्रम विकसित किया और इसके कारगर कार्यान्वयन हेतु शिक्षा मंत्रालय के अधीन अनौपचारिक शिक्षा विभाग की स्थापना की। शिक्षा विभाग ने दिव्यांगों की शिक्षा हेतु विशेष शिक्षा से संबंधित दो कार्यक्रमों का संचालन किया। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य दिव्यांगों को सामान्य और विशेष स्कूलों, दोनों में समान रूप से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। इससे स्कूलों को नऐ उपकरणों से सुसज्जित किया गया और शिक्षण–अधिगम की नई विधियां अपनाई गईं। इससे समग्र रूप से शिक्षा प्रक्रिया लाभान्वित हुई।

विद्यालयी शिक्षा का परिदृश्य

श्रीलंका में पूर्व विद्यालयी शिक्षा (शैशवकालीन देखभाल और विकास) 3–5 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के लिए है और यह स्थानीय निकायों, निजी संस्थानों एवं धार्मिक तथा स्वयंसेवी संगठनों द्वारा प्रदान की जाती है। इसके बाद, बच्चे 18 वर्ष की आयु तक सामान्य शिक्षा में दाखिला लेते हैं। सामान्य शिक्षा के तीन चरण हैं: प्राथमिक (कक्षा 1–5), जूनियर सेकेंडरी (कक्षा 6–9) और वरिष्ठ माध्यमिक (कक्षा 10–11)। प्राथमिक

स्तर पर 5 वर्ष की शिक्षा पूरी करने के बाद बच्चे छात्रवृत्ति परीक्षा देते हैं। निम्न आय वर्ग के जो बच्चे छात्रवृत्ति परीक्षा पास करते हैं उन्हें उच्च शिक्षा स्तर तक की शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। उन्हें मेरिट के आधार पर नेशनल पापुलर स्कूलों में दाखिले का अवसर भी मिलता है।

माध्यमिक शिक्षा के बाद 4 साल की कनिष्ठ माध्यमिक शिक्षा और 2 साल की वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के प्रावधान हैं। इसके बाद विद्यार्थी कालेज स्तर की शिक्षा हेतु जीसीईओएल परीक्षा पास करने के बाद कालेज में दाखिला लेते हैं। कालेज शिक्षा भी 2 वर्ष की है। इसके अंत में विश्वविद्यालयों में प्रवेश हेतु जीसीई उच्च स्तर की परीक्षा देनी होती है। जो विद्यार्थी इस प्रतिस्पर्धा परीक्षा में सफल नहीं होते वे या तो व्यावसायिक शिक्षा स्कूलों में दाखिला लेते हैं या कंपनियों तथा सरकारी विभागों में प्रशिक्षु के रूप में कार्य करते हैं। अगर वे चाहें तो पारंपरिक विश्वविद्यालयों या श्रीलंका मुक्त विश्वविद्यालय से बाह्य विद्यार्थी के रूप में उच्च शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। बागान क्षेत्रों के विद्यार्थियों को शिक्षा महाविद्यालय से अध्यापक शिक्षा में डिप्लोमा करने का अवसर मिलता है। यह पाठ्यक्रम तीन वर्ष का है और पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद राष्ट्रीय स्तर का डिप्लोमा प्रदान किया जाता है।

विद्यालयों का प्रकार

श्रीलंका शिक्षा प्रणाली में कक्षाओं के आधार पर स्कूलों का वर्गीकरण किया गया है। जैसे- 1 एबी, 1 सी, टाईप II और टाईप III स्कूल। 1 एबी स्कूलों में कक्षा 1-13 है और सभी विषय- विज्ञान, वाणिज्य और कला की शिक्षा दी जाती है। 1सी स्कूलों में कक्षा 1 से 13 तक कला और वाणिज्य विषय हैं। टाईप II के स्कूल कक्षा 1 से 11 तक हैं जबकि टाईप III कक्षा I–V तक हैं। 1 एबी स्कूलों की संख्या 621 है जो कुल का 6.4 प्रतिशत है। 1सी स्कूलों की संख्या 1769 (18.1 प्रतिशत), टाईप II के स्कूलों की संख्या 4279 (43.8 प्रतिशत) और 3097 (31.7 प्रतिशत) प्राइमरी स्कूल हैं। इस प्रकार देखा जाए तो 2004 में कुल 9766 स्कूल थे। प्रबंधन व्यवस्था की दृष्टि से स्कूलों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है- प्रांतीय स्कूल (आठ प्रांतीय परिषदों द्वारा) और राष्ट्रीय स्कूल (श्रीलंका शिक्षा मंत्रालय द्वारा)। वर्ष 2012 में 1 एबी, 1 सी, टाईप II और टाईप III स्कूलों सहित 9,829 प्रांतीय स्कूल थे। इसी प्रकार 1 एबी, 1 सी और टाईप II स्कूलों सहित कुल 323 राष्ट्रीय स्कूल थे। इसके अलावा 561 पिरीवेना स्कूल थे। इन

स्कूलों में गैर-सरकारी स्कूल, एस्टेट स्कूल, पिरीवेना स्कूल, विशेष स्कूल, मान्यता प्राप्त/प्रमाणित स्कूल शामिल हैं। पिरीवेना स्कूल बौद्ध मठों से संचालित शिक्षा संस्थान हैं जिनमें बौद्ध भिक्षुओं और उन छात्रों को शिक्षा दी जाती है जो सामान्य शिक्षा के स्कूलों में नहीं जाते।

तालिका-1

शिक्षा संप्राप्ति में असमानताएं

(माध्य स्कोर)

वर्ष	सिंहल	तमिल
1994	68.38	59.81
1995	76.68	55.53
1996	77.45	60.79
1997	72.42	57.03
1998	83.79	66.08
1999	83.39	69.3
2000	88.97	76.28
2001	78.88	64.96
2002	77.63	62.66
2003	76.74	58.97
2004	78.39	66.85

स्रोत: शिक्षा मंत्रालय, श्रीलंका

ग्राफ़ 1: परीक्षाओं में उपलब्धि स्तर में प्रगति

दस वर्ष की अवधि (1994-2004) और (2009-2013) में उच्च शिक्षा हेतु प्रवेश और छात्रवृत्ति परीक्षा के परिणामों में सिंहली और तमिल समुदाय के विद्यार्थियों के सफलता स्तर में असमानाएं देखी जा सकती हैं। यद्यपि दोनों के सफलता स्तर में वृद्धि हुई है मगर दोनों समुदायों के सफलता वृद्धि दर में लगभग 10 प्रतिशत से अधिक का अंतराल है। तालिका-2 में यह पूर्णत: स्पष्ट है।

तालिका–2

शिक्षा के जनरल सर्टिफिकेट (ए / एल)
प्रतिशत योग्यता जीसीवी (ए / एल) क्लासेस दर्ज करने के लिए

वर्ष	प्रतिशतता
1994	22.51
1995	19.45
1996	26.62
1997	32.78
1998	37.43
1999	27.11
2000	29.34
2001	29.74
2002	41.51
2003	44.01
2004	45.04
2009	52.51
2010	58.79
2011	58.09*
2012	62.39*
2013	64.21*

स्रोत: शिक्षा, श्रीलंका और उम्मीदवारों के प्रदर्शन के मंत्रालय – जीसीई (हे/एल) और जीसीई (ए/एल) – 2007–2012, (स्रोत: परीक्षा विभाग)

(*) संख्या से गणना की जीसीई (ए/एल) के लिए प्रतिशत योग्यता 5 या अधिक विषयों के लिए बैठ गया

इसी प्रकार सामान्य शिक्षा प्रमाणपत्र जीसीई (ओ/एल) से जीसीई (ए/एल) कक्षाओं में प्रवेश हेतु अर्हता प्राप्त विद्यार्थियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। 1994 में यह संख्या 22.51

प्रतिशत थी जो 2004 में बढ़कर 45.04 प्रतिशत हो गई। इसमें श्रीलंका की संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में व्यापक सुधार दिखाई देता है।

तदुपरांत आगे भी विकास की गति तीव्र है। 2009 से 2013 के बीच तो उल्लेखनीय वृद्धि हुई जो 50 प्रतिशत से भी अधिक है। 2009 में प्रवेश परीक्षा परिणाम 52.51 था जो 2010 में 58.09 प्रतिशत हो गया।

तालिका-3

शिक्षा के जनरल सर्टिफिकेट (ए / एल)
विश्वविद्यालय प्रवेश के लिए योग्यता के साथ गुजर प्रतिशत

वर्ष	प्रतिशतता
1994	46.01
1995	62.68
1996	53.8
1997	54.24
1998	52.17
1999	43.35
2000	54.6
2001	50.2
2002	44.23
2003	43.7
2004	54.2
2007	61.14
2008	62.89
2009	61.21
2010	61.67
2011	59.26
2012	63.15
2013	58.56

स्रोत: शिक्षा मंत्रालय, श्रीलंका

तालिका-3 से इसकी पुष्टि होती है। इसी प्रकार जीसीई (ए/एल) से विश्वविद्यालय प्रवेश अर्हता में तेजी से वृद्धि हुई है। 1994 में यह 46 प्रतिशत थी जो 2004 में 54 प्रतिशत हो गई। इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। 2010 में यह 62 प्रतिशत थी। 2011-2013 के बीच इसमें थोड़ा उतार-चढ़ाव रहा। 2011 में यह थोड़ी कम हुई और 59.25 प्रतिशत रह गयी। परंतु 2012 में 63.15 प्रतिशत थी।

नामांकन में उतार-चढ़ाव

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि श्रीलंका के सरकारी स्कूलों के नामांकन में कमोबेश उतार-चढ़ाव होता रहा है। 2004 में कुल 9766 सरकारी स्कूल थे जो 2008 में घटकर 9662 रह गए जबकि नामांकन बढ़कर 3.9 मिलियन तक पहुँच गया। 2012 में स्कूलों की संख्या बढ़कर 9829 हो गई और नामांकन घटकर 3.8 मिलियन रह गया। 1 एबी और 1 सी स्कूलों में सर्वाधिक नामांकन रहा जो कुल नामांकन का क्रमशः 32 प्रतिशत और 30 प्रतिशत था। 2004 में टाईप II और टाईप III के स्कूलों में नामांकन क्रमशः 29 प्रतिशत और 94 प्रतिशत था। इस दौरान सभी स्कूलों के मद्देनजर टाईप II के स्कूलों में सर्वाधिक 44 प्रतिशत नामांकन था।

वर्ष 2013 के आंकड़ों के अनुसार टाईप I एबी के कुल 868 स्कूल थे जिनमें 1,521,983 विद्यार्थी पढ़ रहे थे। इससे पता चलता है कि नामांकन में स्कूल की भागीदारी 9 प्रतिशत और विद्यार्थी अनुपात 38 प्रतिशत था। इसी प्रकार 2013 में टाईप 1सी के कुल स्कूलों की संख्या में गिरावट दर्ज की गई। योजना के अंतर्गत 1910 स्कूल पंजीकृत थे जिनमें 1,141,383 विद्यार्थी नामांकित थे और स्कूल अनुपात 19 प्रतिशत था और विद्यार्थी नामांकन अनुपात 28 प्रतिशत था। टाईप II के 3730 स्कूल थे और 862983 विद्यार्थी नामांकित थे। स्कूलों और विद्यार्थियों की भागीदारी क्रमशः 37 प्रतिशत और 21 प्रतिशत थी। टाईप III के 3504 स्कूल थे जिनमें 510808 विद्यार्थी नामांकित थे।

इस श्रेणी में स्कूलों तथा विद्यार्थियों की साझेदारी क्रमशः 35 प्रतिशत और 13 प्रतिशत थी। इस प्रकार 2013 में कुल 10,012 स्कूल थे जिनमें 4,037,157 विद्यार्थी नामांकित थे।

वर्ष 1991 और 2004 के बीच स्कूल वितरण में विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय बदलाव

तालिका-4

सरकारी स्कूल में नामांकन 2008 और 2013

स्कूल के प्रकार	स्कूलों की संख्या			नामांकन			स्कूल के % शेयर			कुल नामांकन के लिए % शेयर		
	2004	2008	2013	2004	2008	2013	2004	2008	2013	2004	2008	2013
1 एबी	621	698	868	1143920	1325718	1,521,983	6	7	9	30	34	38
1 सी	1769	1933	1910	1250146	1275523	1,141,383	18	20	19	32	32	28
प्रकार II	4279	4158	3730	1132844	987,600	862,983	44	43	37	29	25	21
प्रकार III	3097	2873	3504	348,140	341,533	510,808	32	30	35	9	9	13
कुल	9766	9662	10,012	3875050	3930374	4,037,157	100	100	100	100	100	100

स्रोत: शिक्षा, 2008 और 2013 सांख्यिकी मंत्रालय

दिखाई पड़ता है। स्कूलों की हिस्सेदारी की दृष्टि से व्यापक रूप से क्षेत्रीय विविधता पाई गई। 1991 में मध्य प्रांत में 17 प्रतिशत से अधिक स्कूल थे जबकि उवा प्रांत में मात्र 8 प्रतिशत थे। इसके बाद 1991-2004 के दौरान क्षेत्रीय असमानता में कमी आई। क्षेत्रीय असमानता का अंतराल 9 प्रतिशत से घटकर 7 प्रतिशत रह गया। यद्यपि इस अवधि में 1एबी, 1बी और टाईप II के स्कूलों के आवंटन प्रवृत्ति में कोई खास बदलाव नहीं दिखाई पड़ता है। 1991 की तुलना में 2004 में टाईप III के स्कूल वितरण प्रतिमान में उच्च हिस्सेदारी वाले क्षेत्रों में भारी कमी देखी जा सकती है। 2013 के आंकड़ों के अनुसार टाईप II और टाईप III के स्कूलों में तीव्र वृद्धि हुई। यानि टाईप II के 41 और टाईप III के 35 स्कूल थे। आंकड़ों से स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रांत में उच्च स्तर के स्कूलों की संख्या में वृद्धि होती गई।

लैंगिक असमानताएं

श्रीलंका ने स्कूलों और अन्य संस्थानों में पुरुष अनुपात के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए लड़कियों की शिक्षा को आगे लाने हेतु अतिरिक्त प्रयास किया है। महिला छात्रों की हिस्सेदारी वर्ष में प्रांतीय स्कूलों की तुलना में राष्ट्रीय स्कूलों में कम है। राष्ट्रीय स्कूल के केन्द्रीय प्रशासित होने के बावजूद सभी प्रांतों में महिला-पुरुष अनुपात लगभग पुरुष छात्रों के प्रति पक्षपाती है, दूसरी ओर प्रांतीय स्कूलों के बहुमत लगभग सभी प्रांतों में और कुल योग में महिला-पुरुष के छात्र अनुपात में महिलापूर्वाग्रह युक्त थे। इसके अलावा,

तालिका-5

स्कूलों की हिस्सेदारी में क्षेत्रीय अंतर

प्रांत	(% में) 1991 में स्कूलों के प्रकार				(% में) 2004 में स्कूलों के प्रकार				(% में) 2013 में स्कूल के प्रकार			
	1AB	1C	प्रकार द्वितीय	प्रकार तृतीय	1AB	1C	प्रकार द्वितीय	प्रकार तृतीय	1AB	1C	प्रकार द्वितीय	प्रकार तृतीय
1. पश्चिमी	15	25	15	19	25	14	16	9	13	20	40	27
2. केंद्रीय	15	1 1	15	13	14	17	12	18	7	21	32	39
3. दक्षिणी	12	12	15	15	14	13	13	8	12	21	39	28
4. उत्तरी	9	1 1	4	7	10	6	7	13	9	1 1	32	48
5. पूर्वी	8	8	7	5	9	9	8	13	7	17	34	41
6. उत्तर पश्चिमी	13	12	17	15	1 1	14	15	8	7	22	45	26
7. उत्तर मध्य	8	5	8	8	4	8	8	9	7	18	32	43
8. युवा	8	6	8	8	6	9	9	8	9	21	38	32
9. सबरागमुवा	12	10	1 1	12	8	1 1	12	12	7	18	41	35

स्रोत: शिक्षा, 2004 और 2013 सांख्यिकी मंत्रालय

आंकड़ा राष्ट्रीय स्कूलों में छात्रों के बीच पुरुष छात्रों की हिस्सेदारी में व्यापक क्षेत्रीय विविधताएं है जो क्षेत्रीय लिंग असमानता से पता चलता है।

महिला छात्र अनुपात, जो पिछले वर्ष की तुलना में असंतुलित लग रहा था, 2013 में 49.6 प्रतिशत था, जबकि 2004 में पुरुष-महिला अनुपात का परिदृश्य 49.5 प्रतिशत था। इस बीच, पुरुष छात्र अनुपात 50.4 प्रतिशत था। श्रीलंका में प्रांतों में विभिन्न पुरुष-महिला छात्र अनुपात प्राप्त हुआ है जो समय की अवधि में बदल जाता है। पुरुष अनुपात 59.9 प्रतिशत था, जबकि यह पूर्व प्रांत में महिला छात्र अनुपात, 2013 में 40.1 प्रतिशत के रूप में सबसे कम हो गया था। महिला छात्र अनुपात 2013 में 60.6 प्रतिशत के साथ उत्तर मध्य प्रांत में सर्वोच्च स्तर पर था।

तालिका-6

2004 और 2013 में छात्रों की संख्या में लिंग भेद

प्रांत	राष्ट्रीय स्कूल				प्रांतीय स्कूल			
	पुरुष छात्रों का प्रतिशत		महिला छात्रों का प्रतिशत		पुरुष छात्रों का प्रतिशत		महिला छात्रों का प्रतिशत	
	2004	2013	2004	2013	2004	2013	2004	2013
पश्चिमी	57.4	49.8	42.6	50.2	48.7	56.1	51.3	43.9
केंद्रीय	50.3	49.3	49.7	50.7	49.7	48.3	50.3	51.7
दक्षिणी	51.1	49.8	48.9	50.2	49.4	51.4	50.6	48.6
उत्तरी	56.4	49.3	43.6	50.7	49.2	53.7	50.8	46.3
पूवह्न	61.9	50.1	38.1	49.9	48.9	59.9	51.1	40.1
उत्तर पश्चिमी	53.7	49.7	46.3	50.3	49.6	52.8	50.4	47.2
उत्तर मध्य	40.5	49.5	59.5	50.5	51.1	39.4	48.9	60.6
उवा	47.7	48.9	52.3	51.1	49.6	47.7	50.4	52.3
सबारगामुआ	52.2	49.3	54.8	50.7	50.5	44.7	49.5	55.3
श्रीलंका	52.6	49.5	47.4	50.5	49.5	50.4	50.5	49.6

स्रोत: शिक्षा मंत्रालय, शैक्षिक सूचना

शिक्षक - छात्र अनुपात

श्रीलंका अपने शिक्षकों की संख्या और गुणवत्ता के संबंध में कई चुनौतियों का सामना कर रहा है और इस तरह के मुद्दों पर काबू पाने के लिए कार्रवाई किया जाना चाहिए। हाल ही में शिक्षा मंत्रालय ने श्रीलंका में शिक्षकों के लिए आचार और व्यवहार की संहिता की शुरुआत की। लेकिन अध्यापन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए, शिक्षक भर्ती नीति और प्रोटोकॉल लागू किया जाना आवश्यक है, जो कि श्रीलंका शिक्षक सेवा (SLTS) के माध्यम से और लागू किया जाना है। श्रीलंका की शिक्षा प्रणाली स्थापित होने पर बहुत लाभकारी होगी। उनमें एक पेशेवर अनुभव का आदान-प्रदान होगा। अलग शिक्षा प्रणालियों में काम कर रहे अध्यापकों को अधिक अनुभव प्राप्त होता है जिसे गृहदेश के शिक्षकों के साथ इस अनुभव को ऑनसाइट साझा करके शिक्षक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया जा सकता है।

श्रीलंका में मोटे तौर पर प्रति 20 छात्रों पर एक शिक्षक अनुपात है जिसमें प्रांतीय स्कूलों की तुलना अधिक है, वर्ष 2012 में राष्ट्रीय स्कूलों में प्रति 18 छात्रों पर एक छात्र-शिक्षक अनुपात है। वहाँ भी छात्रों शिक्षक अनुपात और विभिन्न क्षेत्रों में स्थित प्रांतीय स्कूलों में काफी क्षेत्रीय विविधताएं मौजूद हैं और स्कूल अनुपात इस परिप्रेक्ष्य में स्कूल शिक्षा के इतिहास में कुछ नया कीर्तिमान बनाता है।

2013 में श्रीलंका के स्कूलों में छात्र-शिक्षक अनुपात का परिणामों से तुलना में पिछले साल की सहसंबंध था। सामान्य स्कूलों में छात्र-शिक्षक अनुपात 2004 में 24.9 था, और जो काफी हद तक समय की अवधि में प्रगति हुई है, और 2013 में यह अनुपात 17.8 उल्लेखित किया गया था। नतीजतन, छात्र-शिक्षक अनुपात क्रमश: 2004 और 2013 में 20.4 और 22 के रूप में समानांतर शर्तों पर बना हुआ था। लगभग सभी अन्य प्रांतों में औसतन 20 था, जबकि केवल दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तर-मध्य प्रांतों में छात्र-शिक्षक अनुपात, 24, 23.9 और 23.8 के रूप में थोड़ा अधिक पाया गया।

श्रीलंका की शिक्षक तैनाती नीति पदस्थापना प्रबंधन से संबंधित है जहां स्कूलों, क्षेत्रों और प्रांतों के बीच शिक्षक गतिशीलता का एक उच्च दर है। यहां तक कि श्रीलंका व्यावसायिक रूप से योग्य शिक्षकों को रोजगार के मामले में शिक्षक की आपूर्ति और मांग में विकेन्द्रीकृत शिक्षा प्रणाली, क्षेत्रीय/प्रांतीय असंतुलन पैदा कर रहा है, हालांकि हाल के वर्षों में यह बढ़ गया और इसे संबोधित करने की आवश्यकता है।

तालिका-7

2004 और 2013 में छात्र-शिक्षक अनुपात

प्रांत	राष्ट्रीय स्कूलों में छात्र-शिक्षक अनुपात		प्रांतीय स्कूलों में छात्र-शिक्षक अनुपात	
	2004	2013	2004	2013
पश्चिमी	25.6	21.6	22.1	23.9
केंद्रीय	23.3	16.6	19.2	19.5
दक्षिणी	25.7	17.5	18.0	24.0
उत्तरी	26.6	16.3	26.2	19.9
पूर्वी	26.8	18.5	24.6	21.2
उत्तर पश्चिमी	23.3	17.5	18.5	21.2
उत्तर मध्य	27.8	17.2	20.3	23.8
उवा	24.1	14.5	19.1	18.5
सबारागमुवा	23.9	16.3	19.4	21.0
श्रीलंका	24.9	17.8	20.4	22.0

स्रोत: शिक्षा मंत्रालय, शैक्षिक सूचना

वित्तीय संकट

श्रीलंका में स्कूल शिक्षा, अच्छी तरह से स्थापित है और मुफ्त शिक्षा सुविधाएं, छात्रवृत्ति और कुछ सार्वजनिक व्यय के प्रभावी प्रक्रियाओं में उच्च भागीदारी की आवश्यकता होती है। छात्र कल्याण कार्यक्रम इस तरह मुफ्त वर्दी, पाठ्यपुस्तकों, और रियायती बस टिकट के वितरण के रूप में 2003 में सरकारी खजाने के सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत 2003 में कुल सार्वजनिक व्यय का 2.22 प्रतिशत था जो शिक्षा पर कुल सार्वजनिक व्यय रुपए 18 मिलियन था। उच्च शिक्षा सहित शिक्षा पर 2002 में कुल सरकारी खर्च का प्रतिशत 9.25 था, जो कि 2003 में 39116 मिलियन थी।

तालिका-8

शिक्षा व्यय

वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में कुल शिक्षा व्यय	सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में कुल सरकारी व्यय	कुल सरकारी खर्च के संदर्भ में कुल शिक्षा व्यय
1960	4.8	–	–
1965	4.9	–	–
1970	4.6	–	–
1975	2.8	–	–
1980	3	–	–
1984	2.3	33	7.1
1986	3.2	38	8.4
1988	3	37	7.9
1990	3.2	35	9.1

स्रोत: श्रीलंका सत्रवार पत्र, 1992, अधयाय पाँच, पृष्ठ 68,

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की पहली रिपोर्ट

1970-80 के दशक के दौरान राज्य में तेल की कीमतों में वृद्धि और स्थानीय बुनियादी ढांचे के विकास में निवेश की जरूरत के रूप में प्रमुख वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा। इससे शैक्षिक धनराशि घटाने के लिए सरकार को मजबूर होना पड़ा। ऊपर तालिका में उल्लेख है कि वर्तमान स्तर पर 1960 के दशक में सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में सार्वजनिक खर्च की हिस्सेदारी में लगभग 5 प्रतिशत की भारी गिरावट आई है।

सरकारी खर्च में इस गिरावट जो एशियाई विकास बैंक द्वारा वित्त पोषित माध्यमिक आधुनिकीकरण परियोजना विश्व बैंक, शिक्षक शिक्षा और विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित शिक्षक तैनाती परियोजना है, और सामान्य शिक्षा परियोजना के रूप में विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित शिक्षा के क्षेत्र में विदेशी वित्त पोषित परियोजनाओं द्वारा भरा गया है। इसके अलावा, श्रीलंका में शिक्षा के लिए अन्य एजेंसियां धन प्रदान कर रही

हैं। 1960-61 में सरकार द्वारा स्कूलों पर नियंत्रण के बाद शिक्षा में काफी गिरावट आई। हालांकि, हाल ही में, अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा उपलब्ध कराने वाले इंटरनेशनल स्कूलों का पुनरुत्थान हुआ है।

समस्याएं

श्रीलंका में सार्वजनिक शिक्षा व्यय में गिरावट के बावजूद दक्षिण एशिया के अन्य देशों की तुलना में शिक्षा के निष्पादन संकेतकों में समग्र सुधार के साथ उच्चतम साक्षरता दर दर्ज की गई है। इसकी वजह विश्व बैंक की विदेशी निकायों से प्राप्त वित्तीय सहायता है। हालांकि, उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय स्कूलों में लिंग भेद, और उच्च छात्र-शिक्षक अनुपात की हिस्सेदारी के मामले में क्षेत्रीय अंतराल व्याप्त हैं। श्रीलंका की शिक्षा प्रणाली समस्याओं से मुक्त नहीं है इसका संकेत मिलता है।

अधिकांश अध्ययनों ने निम्नांकित कमियां बताई : (1) अनुकूल क्षेत्रों में अधिशेष के बावजूद दुर्गम क्षेत्रों में स्कूलों में शिक्षकों की कमी; (2) शिक्षकों के लिए विषय विशेष मांग और शिक्षकों की आपूर्ति के बीच अंतर; (3) उच्च शिक्षक अनुपस्थिति; राजनीतिकरण भर्ती और पदोन्नति के साथ कमजोर शैक्षिक प्रशासन; (4) शैक्षणिक प्रशासकों के लिए उचित प्रशिक्षण प्रणाली का अभाव; (5) सरकारों द्वारा शिक्षा नीतियों के मनमाने ढंग से परिवर्तन; (6) तदर्थ स्कूलों के उन्नयन में नीतिगत फैसले; (7) उचित शिक्षक तैनाती नीति का अभाव; (8) कुछ लोकप्रिय स्कूलों में कक्षाओं में बच्चों की भीड़भाड़; (9) नामांकन की कमी के कारण स्कूलों का बंद होना; (10) सरकारी स्कूलों में शिक्षा की खराब गुणवत्ता; (11) गणित, विज्ञान और अंग्रेजी में उपलब्धियों के निम्न स्तर; (12) निम्न अंग्रेजी शिक्षण, जो संचार विकास में बाधित हैं; (13) पाठ्यपुस्तक उन्मुख शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया; (14) शिक्षा और रोजगार के अवसरों के बीच बेमेल; और (15) नीति निर्माताओं के बीच समन्वय की कमी, (16) अक्षम और अयोग्य नीति कार्यान्वयन, श्रीलंका की शिक्षा प्रणाली की प्रमुख समस्याओं में से हैं।

समाधान और कार्यान्वयन

स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में उचित समस्याओं को हल करने के लिए श्रीलंका एक व्यावहारिक मॉडल प्रणाली स्थापित करने के लिए त्रुटिहीन प्रयास कर रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग

(एनईसी) समस्याओं को दूर करने के लिए सिफारिश की है। आयोग की प्रमुख सिफारिशों में से कुछ शैक्षिक अवसरों की वृद्धि, पाठ्यक्रम नवीकरण; शिक्षकों और प्रधानाचार्यों के व्यावसायिक विकास; शिक्षा, प्रशासन, और संसाधनों के आवंटन में वृद्धि और कुशल उपयोग में सुधार शामिल हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (एनईसी) की सिफारिशें 1998 से लागू हुईं और शिक्षा प्रणाली में कई सुधार किए गए। इन सुधारों के क्रियान्वयन के लिए वित्तीय सहायता परियोजनाओं को उपलब्ध करायी गयी है। इन सुधारों की प्रगति की 2001 में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (एनईसी) और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान मूल्यांकन केन्द्र (एनईआरईसी) द्वारा समीक्षा की गई।

सभी वर्गों के लिए अनिवार्य और शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के कारण नामांकन में वृद्धि हो रही है और इसे स्कूल की जनगणना में दर्ज किया गया है। स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की अपेक्षाकृत तीव्र दर में कमी हो रही है। माध्यमिक शिक्षा आगे बढ़ी है और इस प्रवृत्ति में विशेष रूप से सिंहली और तमिल, दोनों बच्चों के लिए उल्लेखनीय प्रगति हो रही है।

हालांकि, शिक्षा में गुणवत्ता सुधार उम्मीद और परिणाम के साथ नहीं प्राप्त हुआ। कार्यान्वयन में देरी, शिक्षकों के लिए अपर्याप्त प्रशिक्षण और मुख्य मुद्दों की उपेक्षा की वजह से परिवर्तन नहीं हुआ है – अनुसंधान निष्कर्षों यही दर्शाते हैं।

शिक्षक शिक्षा पर अध्ययन स्पष्ट रूप से बढ़ रही संभावनाओं और स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में प्रगतिशील रूपों और प्रक्रियाओं का अनुप्रयोग महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मानव संसाधन, शिक्षक शिक्षा और वित्त की कमी महत्वपूर्ण परिवर्तन को बढ़ावा देने में बाधक हैं।

समापन टिप्पणी

हालांकि क्षेत्रीय असमानता स्कूलों और अन्य संस्थानों में शिक्षा के रूप में इस द्वीपीय राष्ट्र की प्रगति की संभावना को कम कर रहे हैं जबकि श्रीलंका का मानव विकास सूचकांक दक्षिण एशिया में उच्च है। नतीजतन, नए तरीके और शैक्षिक गतिविधियों की पहल देश में शैक्षिक सुधारों की अद्‌भुत कार्यान्वयन नीति को सामने लाती है।

श्रीलंका मजबूत शासन, अच्छी तरह से स्थापित राज्य संस्थाओं और लंबे समय

से आंतरिक संघर्ष और हिंसा के बावजूद कई दशकों से बेहद और विश्वासपूर्वक लाभान्वित मुफ्त प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए देश की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। स्कूल शिक्षा का यह प्रगतिशील और सराहनीय संघर्ष के साथ जीने वाले एक राष्ट्र के इतिहास में नया अध्याय जोड़ता है। इसके अलावा, यह देश में सभी के लिए शिक्षा सुलभ करने की प्रक्रिया को गतिमान करता है और आगे वाली सरकारों ने भी ज़ोरदार प्रयास किया है।

श्रीलंका ने माध्यमिक और उच्च स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता अच्छी तरह से बनाए रखा है और अत्यधिक प्रशंसित संस्थानों में से कुछ कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर विश्वसनीयता, आशावादी और प्रमुख पदों को प्राप्त करने में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु छात्रों के एक समूह के लिए सामाजिक, शैक्षणिक और सरकारी ओहदे के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। वहां के बुद्धिजीवी जोरदार ढंग से इस द्वीप राष्ट्र को महान बनाने के लिए अंतरराष्ट्रीय और वैश्विक स्तर के बराबर शैक्षिक उत्कृष्टता के केंद्रों की स्थापना कर रहे हैं।

राष्ट्रीय और क्षेत्रीय असमानताएं विशेष रूप से ग्रामीण शहरी और शिक्षा प्रणाली में लिंग मतभेद तथा महिला छात्रों की हिस्सेदारी राष्ट्रीय स्कूलों में कम है। यह सीखने की नई रणनीति को दर्शाता है, लेकिन स्कूलों की संख्या के साथ-साथ नामांकन तेजी से बढ़ रहा है। अधिक से अधिक, हालांकि आम जनता के बीच असमानताओं को स्थापित करते हुए सबसे बुद्धिमान छात्रों में से कुछ के लिए अभिजात वर्ग संस्थानों को स्थापित करने की रणनीतियां, मौजूदा स्कूलों और लोकप्रिय संस्थानों की तुलना में बेहतर संस्था दिखाने में रुचि रखती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (एनईसी) और विशेष रूप से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में, अंतरराष्ट्रीय मानकों को अपने सर्वेक्षण में स्थापना, श्रीलंका में नई शिक्षा नीति की प्रक्रिया और शिक्षक शिक्षा और सैकड़ों शिक्षकों की अपनी उपलब्धि के उद्भव के सुधार के रास्ते में कुछ मील के पत्थर बना रहे हैं। यह राष्ट्र की बेहतरी के लिए बेहतर शिक्षकों और अच्छे शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों की पहचान करने के लिए एक प्रभावी प्रक्रिया है।

सन्दर्भ

बालासूर्या, बी.एम.जे. (2004): *एन इवाल्यूशन आफ द इंपैक्ट आफ स्कूल बेस्ड रिसोर्स मेंनेजमेंट एंड फार्मूला फंडिंग आफ स्कूल्स आन द इफीसिएंसी एंड इक्विटी आफ रिसोर्स एलोकेशन इन श्रीलंका.* लंदन: इंस्टीट्यूट आफ एजुकेशन, युनिवर्सिटी आफ लन्दन, यू.के.।

बालासूर्या, बी.एम.जे. (2005): *वर्किंग पेपर आन स्कूल-बेस्ड टीचर रिक्रूटमेंट पालिसी (एसबीटीआरपी)* बैटरमुला: प्लानिंग एंड परफारमेंस रिव्यू डिविजन, मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, श्रीलंका।

बालासूर्या, बी.एम.जे. (2010): फूड्स फार थॉट: व्हाई नॉट इन्ट्रोड्यूस स्कूल-बेस्ड टीचर रिक्रूटमेंट पालिसी इन श्रीलंका?' आर्टिकल पब्लिस्ड इन द *आइसलैंड* न्यूजपेपर एंड ऑनलाइन एडीशन (16 नवंबर 2010 और 20 नवंबर 2010) (www.island.lk), श्रीलंका।

सेंट्रल बैंक ऑफ श्रीलंका, एनुअल रिपोर्ट, 2005. चैप्टर 5: इकोनमिक एंड सोशल ओवरहैड्स।

सेंट्रल बैंक श्रीलंका, *इकोनमिक एंड सोशल स्टेटिस्टिक्स आफ श्रीलंका 2013,* कोलंबो, श्रीलंका।

दिसनायके, अरुणा (2012): *आईसीटी इन स्कूल एजुकेशन (प्राइमरी एंड सेकेण्डरी)*, सेकेण्डरी एजुकेशन मॉडर्नाइजेशन प्रोजेक्ट, मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, कोलंबो, श्रीलंका।

एजुकेशन फॉर ऑल, नेशनल एक्शन प्लान, श्रीलंका, मंत्रालय, मानव संसाधन विकास, शिक्षा और सांस्कृतिक मामले, कोलंबो, एन डी

गुणासिंघे, जी.एल. लीला : ''एजुकेशनल सपोर्ट्स फार चिल्ड्रन विद मल्टीपल डिसएबीलिटी विद सेंसरी इंपेयरमेंट, इंक्लूडिंग डीफ-ब्लाइंडनैश इन श्रीलंका,'' *कंट्री रिपोर्ट,* श्रीलंका एन डी

ह्यूमन डवलपमेंट रिपोर्ट 2013 द *राइज आफ द साउथ ह्यूमन प्रोग्रेस इन ए डायवर्स वर्ल्ड एक्सप्लेनेटरी नोट,* श्रीलंका।

लिटिल, एंजेला डब्ल्यू (एड.): *प्राइमरी एजुकेशन रिफार्म इन श्रीलंका,* प्राइमरी एजुकेशन प्लानिंग प्रोजैक्ट (पीईपीपी), शैक्षिक प्रकाशन विभाग, शिक्षा मंत्रालय और उच्च शिक्षा, कोलंबो, श्रीलंका, 2000।

शिक्षा मंत्रालय, (अगस्त, 2004): द *डवलपमेंट आफ एजुकेशन*, नेशनल रिपोर्ट, श्रीलंका।

शिक्षा मंत्रालय (2010): *स्कूल सेन्सस-2010*, बैटरमुला: शिक्षा मंत्रालय, श्रीलंका।

प्रोग्रेस इन एजुकेशन: 2003-2004, शिक्षा मंत्रालय, श्रीलंका द्वारा प्रकाशित।

स्कूल सेन्सस-2004: *प्रेलीमिनरी रिपोर्ट,* शिक्षा मंत्रालय, श्रीलंका।

श्रीलंका सैसनल पेपर, 1992, अध्याय पाँच (द *फर्स्ट रिपोर्ट आफ नेशनल एजुकेशन कमीशन*)।

सेकेण्डरी एजुकेशन मॉडर्नाइजेशन प्रोजेक्ट-2, मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, प्रोपोजल्स फार ए नेशनल पॉलिसी फ्रेमवर्क आन जनरल एजुकेशन इन श्रीलंका: 2003, नेशनल एजुकेशन कमीशन, श्रीलंका।

सील, अमांडा. (2007): *सोशल इंक्लूजन: जैंडर एंड इक्विटी इन एजुकेशन स्वैप्स इन साउथ एशिया,* यूनिसेफ सिंस्थेसिस रिपोर्ट काठमांडू।

स्कंधकुमार, बालासिंघम (2013): *क्राइसिस, वुलनरबिलिटी, एंड पावर्टी इन साउथ एशिया: पीपुल्स स्ट्रग्लस फार जस्टिस एंड डिगनिटी,* कंट्री रिपोर्ट, श्रीलंका, साउथ एशिया अलायंस फार पावर्टी एराडिकेशन (एसएएपीई), काठमांडू, नेपाल।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

आँगनवाड़ी व्यवस्था एवं पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में इसका योगदान

कौशल किशोर*

सारांश

86वें संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा का अधिकार कानून 2009 को 6 से 14 वर्ष तक के आयु-समूह के बालकों का मौलिक अधिकार घोषित किया है जो 1 अप्रैल 2010 से लागू हो गया है। पर स्कूल में आने के पूर्व उस बच्चे की शिक्षा के मापन के क्या आधार हैं इस बात पर कम ही ध्यान दिया गया है। इसकी व्यवस्था ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर ज्यादा अपेक्षित है क्योंकि कृषि कार्य और तीव्र नगरीकरण के परिवेश में बालक पर परिवार का ध्यान कम हो गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में बालक के बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा और समाजीकरण की सकारात्मक शुरुआत करने के उद्देश्य से भारतीय सरकार ने सम्पूर्ण भारत में आँगनवाड़ी की स्थापना की योजना है जो एक तरफ तो बालक के सर्वांगीण विकास की शुरुआत करता है, साथ ही, महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं भी मुहैया करवाता है। आज जब ड्रॉपआउट की संख्या सबसे ज्यादा झारखंड जैसे राज्य में है ऐसे में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य से स्थापित आँगनवाड़ी केंद्र के संदर्भ में अध्ययन इस उद्देश्य से किया गया है कि यह पता लगाया जा सके कि बच्चों में विद्यालय के संदर्भ में रुचि विकसित करने में उनमें सही पोषण की व्यवस्था किस हद तक अपनी भूमिका का निर्वहन कर रही है।

प्रस्तावना

मानव जीवन के आरम्भिक वर्ष अत्यन्त नाजुक होते हैं क्योंकि इस अवस्था में वृद्धि एवं विकास सर्वाधिक तेजी से होता है या यूँ कह ले कि भावी जीवन के लम्बे मीनार की नींव यही पड़ती है। यह काल उसके शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, मनोवैज्ञानिक

* दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.एड., एम.एड. करने के पश्चात् अभी केन्द्रीय विद्यालय संगठन में शिक्षणरत हैं।

विकास की दृष्टिकोण से काफी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर माता-पिता, परिवार-पड़ोस, परिवार की भी आर्थिक स्थिति आदि काफी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। यदि इन सारी घटकों में सकारात्मक स्थिति होगी तो बच्चे का समुचित विकास हो सकेगा और यदि कोई भी एक घटक में असंतुलन की स्थिति होगी तो समुचित विकास हो पाना मुश्किल है।

भारत जैसे विविधतापूर्ण वाले देश में जहाँ विविधता का आधार सामाजिक और आर्थिक व सांस्कृतिक स्तर पर इतना विस्तृत हो तो ऐसी स्थिति में सभी बच्चे के प्रारम्भिक स्तर का विकास समान रूप से हो ऐसा सोचना गलत होगा। हाल की गरीबी स्तर पर निवास करने वाले की संख्या के आँकड़े और कुपोषित बच्चों के बड़े आँकड़े भारत की वास्तविक भविष्य को स्पष्ट रूप से दिखाता है। ऐसे में राज्य की भूमिका बढ़ जाती है क्योंकि आधुनिक राजनीतिक दर्शन जन की खुशहाल की बात करती है और इसमें राज्य के कर्त्तव्य को भी निरूपित करती है। यहाँ एक और बात उल्लेख करना समीचीन होगा कि अभी हाल के कुछ शोधों से यह भी पता चला है कि कुपोषण का संबंध महज आर्थिक स्थिति से नहीं है क्योंकि उच्च धनी वर्ग के लोग के बच्चे भी कुपोषित है यहाँ समाज की स्थिति, जागरूकता का स्तर प्रमुख रूप से जिम्मेवार है।

इसी परिप्रेक्ष्य में बालक के बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा के बेहतर शुरुआत और समाजीकरण का सकारात्मक शुरुआत करने के उद्देश्य से भारतीय सरकार ने पूरे भारत में आँगनवाड़ी की स्थापना की है जो एक तरफ बालक के सर्वांगीण विकास की शुरूआत तो करता ही है साथ ही महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी सुविधा भी मुहैया कराता है। इसके साथ-साथ ग्रामीण महिला सशक्तिकरण का भी एक मजबूत आधार प्रस्तुत करता हुआ प्रतीत होता है।

अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान में भारत देश में 1 अप्रैल 2010 से शिक्षा को 6-14 वर्ष की आयु के बालकों का मौलिक अधिकार घोषित किया गया जिसकी विस्तृत व्याख्या संविधान के अनुच्छेद-21(A) में की गई है। जब से यह अधिकार लागू हुआ है तब से अनेक बुद्धिजीवियाँ ने इससे संबंधित अनेक प्रश्नों पर विचार विमर्श किया है। मसलन क्या यह शिक्षा का अधिकार देने वाला या शिक्षा का अधिकार छीनने वाला कानून है। 14 वर्ष की आयु के बाद क्या होगा। आयु के अनुसार कक्षा में प्रवेश देने पर शिक्षा की गुणवत्ता भला क्या रह जाएगी आदि तमाम सवालों पर विद्वानों ने विमर्श किया है। किन्तु ध्यान देने योग्य तथ्य यह है

कि यह तमाम सवाल तो वे है जो स्कूल में विद्यार्थी के रूप में बच्चे के प्रवेश से शिक्षा के अधिकार के रूप में देखते हैं पर स्कूल में आने के पूर्व उस बच्चे की शिक्षा के क्या मापन एवं आधार है इस बात पर कम ही ध्यान दिया गया है। जबकि इसकी व्यवस्था ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर ज्यादा अपेक्षित है क्योंकि कृषि कार्य और तीव्र नगरीकरण के परिवेश में बालक पर परिवार का ध्यान कम हो गया है इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। हालाँकि सरकार ने इसी कारण बालवाड़ी और आंगनबाड़ी केंद्र की स्थापना की है।

आज जब ड्रॉपआउट की संख्या सबसे ज्यादा झारखंड जैसे राज्य में है ऐसे में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य से स्थापित आँगनवाड़ी केंद्र के संदर्भ में अध्ययन आवश्यक है ताकि यह पता लगाया जा सके कि बच्चों में विद्यालय के संदर्भ में रुचि विकसित करने में इसकी भूमिका कितनी हद तक है क्या यह बच्चों के अन्दर सही पोषण की व्यवस्था, करने में अपनी भूमिका का निर्वहन कर रही है या नहीं। ऐसे अनेक प्रश्नों का जवाब आँगनवाड़ी केंद्र के बारीक अध्ययन के पश्चात् ही संभव है।

प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या

हमारे शोध-कार्य आँगनवाड़ी व्यवस्था एवं इसके पूर्व प्राथमिक शिक्षा में योगदान का अध्ययन है। इसमें मूल रूप से दो शब्दावली प्रमुख है जो निम्न है-

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा- सामान्यत: हम शिक्षा का स्थान स्कूल समझते है तथा शिक्षा को लिखाई-पढ़ाई समझा जाता है। लेकिन ऐसा नहीं है बालक की शिक्षा उसके माता के गर्भ से ही प्रारम्भ होती है लेकिन शिक्षा की परिभाषा में यह शिक्षा जो 2.5 से 5-6 वर्ष तक स्कूल में दी जाती है, सामान्यत: विभिन्न मायनों से प्रचलित है- किंडनगार्टन, मॉन्टेसरी, नर्सरी, पूर्व प्राथमिक पूर्व बेसिक बालवाड़ी, आँगनवाड़ी आदि। पूर्व प्राथमिक शिक्षा वह शिक्षा है जो बालक को विद्यालय में नियमित प्रवेश से पूर्व प्रदान की जाती है। यह कोई निश्चित विद्यालय समय में ही प्रदान नहीं की जाती है।

शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार वृहद अर्थों में पूर्व प्राथमिक शिक्षा बालक का प्राकृतिक, भावात्मक और बौद्धिक विकास है, विशेषकर उनका घरेलू पृष्ठभूमि असंतोषजनक है।

आँगनवाड़ी- आँगनवाड़ी एक घर के आंगन से संदर्भित करता है जो हिन्दी शब्द

आंगन से ली गई है, लोग चर्चा, नमस्कार और मेलजोल के लिए एक साथ मिलने के लिए जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों के घरों में उपस्थित होते है उसे आँगन कहा जाता है। आँगन खाना पकाने के लिए, घर के सदस्यों को खुली हवा में सोने के लिए भी कभी-कभी प्रयोग होता है। दरअसल यह हिस्सा घर के दिल के रूप में समझा जा सकता है। आंगनबाड़ी शब्द का चयन ग्रामीणों को इस योजना के साथ से जोड़ती है, अपनेपन के साथ जोड़ती है। इसलिए इस शब्द का अर्थ काफी सारगर्भित है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध-कार्य अध्ययन के उद्देश्य को दो भागों में देखा जा सकता है। पहला व्यापक उद्देश्य और दूसरा विशिष्ट उद्देश्य। इसका व्यापक उद्देश्य तो यह है कि आँगनवाड़ी व्यवस्था के तहत पूर्व प्राथमिक शिक्षा की स्थिति जानना है, पर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ विशिष्ट उद्देश्य का निर्धारण करना पड़ेगा, क्योंकि यह ही किसी शोध की दिशा निर्धारित करता है और शोध कार्य सटीकता से लक्ष्य प्राप्त की ओर बढ़ता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किए गए है:

(i) आँगनवाड़ी केंद्र की संरचनात्मक स्थिति का अध्ययन करना।

(ii) आँगनवाड़ी केंद्र के प्रबंधन की स्थिति का अध्ययन करना।

(iii) आँगनवाड़ी केंद्र में कार्यरत महिलाओं की समझ, स्थिति, समस्या का अध्ययन करना।

(iv) आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और बच्चे, अभिभावक की स्थिति और उनके बीच संबंध का अध्ययन करना।

(v) आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और बच्चों के साथ उनके क्रियाकलाप (गतिविधियाँ) का अध्ययन करना।

इन तमाम उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात् ही यह तय किया जा सकेगा कि वास्तविकता में आँगनवाड़ी व्यवस्था एवं इसका पूर्व प्राथमिक शिक्षा में क्या योगदान है।

अध्ययन का परिसीमन

किसी भी शोध-कार्य में शोध के क्षेत्र व उपकरण असीमित होते है परंतु कुछ कारणों में शोध की प्रकृति, उद्देश्य, स्तर, समय सीमा को ध्यान में रखते हुए शोध कार्य का परिसीमन करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध के परिसीमन इस प्रकार है:

(i) प्रस्तुत शोध-कार्य में आंकड़े का संकलन केवल झारखंड राज्य के चतरा जिला के तीन प्रखंड से वह भी खास कर सिमरिया प्रखंड तक ही सीमित हैं।

(ii) यह अध्ययन में 100 आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से प्रश्नावली भरवाया गया है साक्षात्कार महज 10 आँगनवाड़ी कार्यकर्ता का ही लिया गया है जो महज सिमरिया प्रखंड के ही है।

(iii) अभिभावक साक्षात्कार में भी 10 अभिभावक का चयन किया गया है वह भी सिमरिया प्रखंड तक ही सीमित है।

(iv) यह अध्ययन आँगनवाड़ी केंद्र के कार्यक्रम में भी पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से संबंधित कार्यक्रम, पोषण से संबंधित कार्यक्रम तक सीमित है।

(v) यह पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में भी महज आँगनवाड़ी केंद्र तक सीमित है इसके बाहर आने वाले बालक के संदर्भ में यह मौन है

शोध विधि

शैक्षिक शोध से तात्पर्य शिक्षा के क्षेत्र में किए जाने वाले शोध से होता है। जिसका उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न पहलुओं, आयामों, प्रक्रियाओं आदि के विषय में नवीन ज्ञान का सृजन, वर्त्तमान ज्ञान की सत्यता का परीक्षण, उनका विकास और भावी योजनाएँ की दिशा का निर्धारण करना होता है (भटनागर एवं भटनागर 2007)। बेस्ट (1995) के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र परिस्थितियाँ को अधिक सुचारू रूप से समझना है। जिसमें यह प्रक्रिया सफलतापूर्वक चल सकती है। शैक्षिक शोध का लक्ष्य शिक्षा के क्षेत्र में विद्यमान किसी समस्या का समाधान खोजना होता है। शोध के पश्चात् नवीन ज्ञान का सृजन होता है। तथा वर्तमान परिस्थितियों एव व्यवहार का नियंत्रण तथा उनमें सुधार करना होता है। शोध के लिए आवश्यक है कि समस्या के अनुरूप ही उपयुक्त विधि, उपकरण एवं प्रतिदर्श का चयन किया जाए। इस अध्याय में प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए प्रयुक्त शोध विधि की व्याख्या की गई है।

किसी भी समस्या के व्यवस्थित अध्ययन तथा शोध उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अध्ययन की विधि एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य पद है। प्रस्तुत अध्ययन 'आँगनवाड़ी व्यवस्था एवं इसके पूर्व प्राथमिक शिक्षा में योगदान का समग्र अध्ययन' एक गुणात्मक शोध है। इसके अन्तर्गत संबंधित क्षेत्र से प्रतिदर्श चयन के पश्चात् आवश्यक सूचनाओं के संकलन के लिए प्रश्नावली, साक्षात्कार सूची और अवलोकन का प्रयोग किया गया है।

प्रतिदर्श एवं प्रतिचयन

निर्धारित समय में शोध कार्य पूरा करने के लिए हम सम्पूर्ण पर शोध नहीं कर सकते इसके लिए हमें कुछ प्रतिबिम्ब चुनना होता है जिनमें वे सभी गुण होते है। इसी चुनी गई इकाई को ही न्यायदर्श कहते है। न्यायदर्श प्रविधि शोध कार्य की व्यवहारिक तथा समय धन व शक्ति की दृष्टि से मितव्ययी बना देता है। न्यायदर्श प्रविधि के प्रयोग से शोध–परिणामों को अधिक शुद्ध एवं मितव्ययी बनाया जाता है। इस न्यायदर्श में कार्य करने की गति तीव्र होती है। न्यायदर्श से प्राप्त आँकड़े सम्पूर्ण जाति का प्रतिनिधित्व करता है। समग्र में से कुछ इकाइयों का चयन इस प्रकार करते हैं वे चुनी इकाइयाँ सम्पूर्ण वर्ग का सही प्रतिनिधित्व करे। इकाईयों के इस चुने गए समूह को न्यायदर्श कहते है।

प्रस्तुत शोध का न्यायदर्श: मानव शरीर में हृदय का जितना महत्त्व है उतना ही महत्त्व अनुसंधान में न्यायदर्श का है इसके अभाव में अनुसंधान का अस्तित्व ही नही है अत: न्यायदर्श व जितना सुदृढ़ होगा अनुसंधान के परिणाम उतने ही वैध एवं विश्वसनीय होंगे।

वर्तमान शोध में झारखंड राज्य के चतरा जिला के सिमरिया प्रखंड के 10 आँगनवाड़ी केंद्र के आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से साक्षात्कार को न्यायदर्श के रूप चयनित किया गया है। इसके अलावे 10 अभिभावकों को भी चयनित किया गया है जिनके बच्चे आँगनवाड़ी केंद्र में पढ़ाई करते है, साक्षात्कार के लिए। इसके अलावे 100 आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से प्रश्नावली भरवाया गया है। इसके आँकड़े विश्लेषण के लिए उनकी प्रश्नावली का भी चयन किया गया है जो प्रश्नावली के कुछ सवाल का जवाब नहीं दिए हैं। ताकि शोध अध्ययन की वास्तविक स्थिति को बताया जा सके।

आंकड़ा संकलन की विधि/उपकरण

आंकड़ें संकलन की विधि और उपकरण का निर्धारण समस्या के अनुसार होता है। यह मूल रूप से गुणात्मक और कुछ हद तक व मात्रात्मक, प्रकृति का अनुसंधान है। इसलिए इस कार्य को पूर्ण करने के लिए उपकरणों का चयन भी एक अपने आप में चुनौतिपूर्ण कार्य था। उपकरण के रूप में मुख्य रूप से तीन विधियों का प्रयोग किया गया है–

(क) प्रश्नावली: प्रश्नावली एक योजना होती है जिसमें किसी मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, शैक्षिक आदि विषयों पर प्रश्न की श्रृंखलाओं से किसी व्यक्ति या समूह को भेजा या भरवाया जाता है जिससे जाँच की समस्या के संबंध में आँकड़े प्राप्त हो सके।

शोधार्थी ने निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए प्रश्नावली का निर्माण किया है:

1. प्रश्नावली के प्रश्न, संख्या में क्रम, स्पष्ट, एकार्थक, सरल तथा परस्पर पूरक है।
2. प्रश्नावली की भाषा स्पष्ट एवं विशिष्ट है।
3. प्रश्नावली में पारिभाषिक, सापेक्षिक, विभागीय तथा संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है।
4. प्रश्नों का निर्माण उस ढंग से किया जाए कि वह सही सूचना प्राप्त करने में बाहरी स्वरूप पर भी अधिक ध्यान दिया गया है। इसका आकार-प्रकार आकर्षक है।
5. प्रश्नों को क्रमबद्ध ढंग से देखा गया है।

प्रस्तुत शोध की प्रश्नावली:

- प्रस्तुत शोध में खुली व बंद दोनों प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है, जिसमें प्रतिवादी के अपने शब्दों में स्वतंत्र उत्तर की माँग की है।
- यह प्रश्नावली मूल रूप से 100 आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से भरवाया गया है।
- प्रश्नावली को भरने वाले सभी आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता वर्तमान कार्यरत महिलाएँ हैं
- यह प्रश्नावली डाक द्वारा न भेजकर शोधार्थी द्वारा स्वयं प्रत्यक्ष रूप से प्रतिवादी के पास जाकर भरवाई गई

(ख) साक्षात्कार पद्धति: साक्षात्कार पद्धति ही एक ऐसी पद्धति है जो व्यक्तियों के भावनाओं, मनोवृत्तियों और उद्देश्यों का उचित रूप से अध्ययन कर सकती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अनुसंधानर्त्ता अपनी अध्ययन वस्तु ''मनुष्य'' से आमने-सामने के संबंध स्थापित कर वार्तालाप करता है। यद्यपि इसके प्रयोग में पक्षपातों के आने की संभावना रहती है, फिर भी यह सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में एक उपयुक्त कार्यप्रणाली मानी गई है।

इस शोधकार्य में साक्षात्कार मूल रूप से 10 आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता का और 10 अभिभावकों का लिया गया है जो कुछ हद तक संरचनात्मक प्रकार की है इसके कुछ प्रश्न पहले से चयनित थे और कुछ प्रश्न परिस्थिति रूप से सामने आई जिसे भी अपने शोध कार्य में शोधकर्त्ता द्वारा समाहित किया गया है।

(ग) प्रत्यक्ष अवलोकनः अवलोकन को वैज्ञानिक अन्वेषण की शास्त्रीय पद्धति कहा जा सकता है। अवलोकन वैज्ञानिक अनुसंधान का ही आधार नहीं है बल्कि अपने दैनिक जीवन के चारो ओर की घटनाओं को देखने समझने में भी अवलोकन की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है

इस अध्ययन में शोधार्थी द्वारा प्रश्नावली, साक्षात्कार के अलावा प्रत्यक्ष अवलोकन का भी सहारा लिया गया है। क्योंकि प्रश्नावली से लगभग सारी बातें सामने नहीं आ सकती है। इसलिए साक्षात्कार तकनीक का प्रयोग किया पर साक्षात्कार के दौरान भी बहुत सी चीजें छूट जाती है। जैसे आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं के हाव–भाव, बच्चों के साथ उनका व्यवहार, आँगनवाड़ी केंद्र की वास्तविक स्थिति, बच्चों के द्वारा किया गया व्यवहार आदि।

इस आलोक में शोधार्थी ने प्रत्यक्ष अवलोकन का सहारा लिया। इसके तहत उसने आँगनवाड़ी की संरचना, योजना स्थल, भण्डारण स्थल, कक्षा, पठन सामग्री, पठन सामग्री का उपयोग आदि के बारे में जानने का पुरा अवसर मिला।

निष्कर्ष

आँगनवाड़ी केंद्र में बच्चों के शारीरिक क्रियात्मक विकास हेतु भौतिक संसाधनों की कमी है। सभी आयु वर्ग के बच्चों के लिए खेलों का अपना महत्त्व होता है। ताकि उनका विकास भली–भाँति हो सके। किन्तु इस केंद्र में बच्चों के खेलने के लिए स्थान का अभाव है क्रियाओं को करवाने के लिए शिक्षण सामग्री भी उपयुक्त मात्रा में नहीं है बिजली, रसोई, कमरे की उपस्थिति भी बहुत ही निम्न कोटि की है।

आँगनवाड़ी कार्यकत्ताओं को अन्य कार्य का दबाव शिक्षण कार्य में बाधा पहुँचाती है और सभी आँगनवाड़ी कार्यकत्ताओं बच्चों की संख्याओं का जितना लेखा–जोखा रखा है उसी संख्या में बच्चे आते नहीं है ऐसा उन्होंने इसलिए किया है ताकि उनको समान की मात्रात्मक उपलब्धता अधिक हो और उनका केंद्र बन्द न हो।

आँगनवाड़ी केंद्र में निम्न आयुवर्ग के बच्चों की संख्या अधिक है अधिकतर अभिभावक पढ़े–लिखे नहीं है पर वह आँगनवाड़ी केंद्र के बारे में जानते हैं और बच्चों को वहाँ भेजना भी चाहते हैं। क्योंकि वह अपने बच्चे में वहाँ जाने के पश्चात् उनके व्यवहार के सकारात्मक बदलाव को देखते हैं। बच्चों को खाना खाने के पहले हाथ धोना, वहाँ की गतिविधियों के घर में दुहराना आदि कार्यों से अभिभावक इसका श्रेय पूरी तरह आँगनवाड़ी

केंद्र को देते हैं। हालांकि कुछ ग्रामीण सामाजिक बंधनों के कारण अभिभावक के पितृ पक्ष आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से किसी भी तरह का वार्तालाप नहीं कर पाते हैं ऐसा भी शोधकर्त्ता ने पाया।

अभिभावक के नजर में आँगनवाड़ी केंद्र का होना बच्चों ने विकास के लिए सही है और उनका मानना है कि इससे बच्चों में अनेक तरह के परिवर्तन तो आते ही है साथ ही स्कूल जाने की आदत की शुरुआत होती है और बच्चे भी आँगनवाड़ी केंद्र में जाना पसंद करते हैं।

आँगनवाड़ी केंद्र में विभिन्न आयु वर्ग के बच्चे आते हैं। उनके साथ केंद्र के कार्यकर्त्ता विभिन्न प्रकार के गतिविधियाँ करवाना चाहते हें पर समान की अनुपलब्धता के कारण वह सभी गतिविधियाँ नहीं करा पाते हैं। इसके अलावे वह यह गतिविधियाँ में बच्चों को शामिल भी नहीं करा पाते क्योंकि स्थान की भी कमी का सामना उनको करना पड़ता है। केंद्र आने वाले बच्चों के अभिभावक अपने बच्चों को समय से केंद्र में नहीं भेजते हैं इसमें उनका निजी कारण होता है और केंद्र की कार्यकर्त्ता भी उनको देरी से भेजने का कारण यदा कदा ही पूछती है। शोधकर्त्ता ने तो यहाँ तक देखा कि भोजन बंटने के पहले और बाद तक बच्चे आते रहे।

जिस क्षेत्र में शोधकर्त्ता ने कार्य किया दरअसल वह मुख्य शहर से काफी दूर है और नक्सल प्रभावित क्षेत्र भी है ऐसे में शोधकर्त्ता ने उनसे यह जानने का प्रयास किया कि नक्सलियों से भी उनको कार्य करने में अवरोध का सामना करना पड़ता है तो उन्होंने बहुत डरे और दबे स्वर में कहा कि कभी कभी उनके कारण केंद्र बंद भी रखना पड़ता है। इसके कारण यहाँ निरीक्षण करने का कोई अफसर नहीं आते हैं। तब शोधकर्त्ता ने यह जानना चाहा कि तब तो आप केंद्र जब चाहे खोले और बन्द करे कोई देखने वाला नहीं है ऐसे में उनका कहना था सभी तो अपने गाँव के ही लोग है अपने घर के ही है और अपने लोग के लिए ही तो काम करना है। यहाँ शोधकर्त्ता ने उस गाँव के मूल्य को देखा जो आज महज किताबों में अपना जगह बनाए हुई है।

आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से जब शोधकर्त्ता ने कुछ सुझाव माँगे कि इस काम को और बेहतर के लिए सरकार का क्या करना चाहिए। इस पर उन लोगों यह कहा कि आँगनवाड़ी का आकार बड़ा करना चाहिए साथ ही आधारभूत संरचना से उसे लैस करना चाहिए। इसके आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता की संख्या बढ़ाने की जरूरत है इस संबंध में

अभिभावक के विचार भी यह ही थे इसके साथ-साथ आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं को वेतन भी बढ़ाने की जरूरत है। वेतन की अल्पता उनके सुझाव में प्रथम था।

शोधकर्त्ता ने अवलोकन में पाया कि बच्चे-बच्चियों के अनुपात में नामांकन और उपस्थित में कापफी भिन्नता थी पर जो बच्चे वहाँ उपलब्ध थे वह वहाँ काफी खुश लग रहे थे। स्कूल में जैसे बच्चे जाना पसंद नहीं करते दिखते हैं पर अभिभावक भी यह कहते पाये गए कि उनका बच्चा आँगनवाड़ी केंद्र जाना चाहता है। बच्चे को देखने से यह लगा कि बच्चे आँगनवाड़ी केंद्र में रहना चाहते हैं और वहाँ उन्हें रहना अच्छा भी लगता है।

आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता और अभिभावक के साथ मेल मिलाप की कोई विधिवत व्यवस्था नहीं है पर गाँव की संबंधों की सहजता ने अलग संबंध का निर्धारण किया है हालाकि उसी गाँव की सहजता ने एक समस्या को भी जन्म दिया है जिसमें अभिभावक में पितृपक्ष आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से बात इसलिए नहीं करते हैं कि क्योंकि वहाँ संबंध भावों और भैसूर का संबंध है। और इस संबंध की विशेषता यह है कि इसमें दोनों पक्ष की छाया भी एक दूसरे से मेल नहीं खाना चाहिए। ऐसे कोई बात करनी होती है तो मातृ पक्ष ही आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से करती है। बच्चे से आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता से सहज संबंध है जिसमें वह उनकी उपस्थिति-अनुपस्थिति का इल्म रखती हुई प्रतीत होती है।

आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं को अनेक गतिविधियों को करवाने की विधिवत प्रशिक्षण दी जाती है। शायद वह जानते भी है पर गतिविधियाँ करवाने के लिए स्थान और समान की प्रचुरता कहीं भी नहीं दिखी बच्चों की उम्र व क्षमता के अनुसार उनका कक्षा विभाजन भी नहीं था सभी एक ही श्रेणी में रखा गया और एक ही तरह की गतिविधियाँ करवाई जा रही थी जो छात्र लाभ के दृष्टिकोण से सही नहीं है। जितने तरह की गतिविधियाँ की चर्चा की गई उसमें से कुछ एक ही करवाए जाते थे वह भी आधे-अधूरे। हालाकि बच्चों में इस संदर्भ में रुचि स्पष्ट तौर से देखी गई। बच्चे गतिविधियाँ करने के लिए उत्साहित लगभग हर जगह दिखे।

संदर्भ

बैस्ट आई.डब्ल्यू एंड खान जेम्स वी. (1995): रिसर्च इन एजुकेशन, प्रेन्टिस, हल आफ इंडिया प्रा. लि., नई दिल्ली

बुच, एम.बी. (1997): फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन 1988-92, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

योजना, नवम्बर, (2006) चौधरी रेणुका, आई.सी.डी.ए. बाल विकास के प्रति भारत की वचनबद्धता,

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

समेकित बाल विकास सेवाएँ मार्च, (2006) कार्य एवं दायित्व, दिल्ली समाज कल्याण विभाग, दिल्ली सरकार

वार्षिक रिपोर्ट (2012): महिला एवं विकास विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

इन्टेग्रेटेड डवलपमेंट सर्विस (2011) महिला एवं विकास विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

कॉल, लोकेश (2006) शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा.लि. दिल्ली

कॉल विनिता (1991) अर्ली चाइल्डहुड प्रोग्राम, एनसीईआरटी, नई दिल्ली

मोहंती जे. एंड मोहंती बी. (1994): अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन (ईसीसीई) डीप एंड एजुकेशन पब्लिकेशन, नई दिल्ली

मंडोवरा (2004)आर व अन्य आँगनवाड़ी केंद्र में अनुकूल समय निर्धारण पर अध्ययन, सोशलवर्क विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

नलिनी के. (1989): स्टडी आफ फंक्शनिंग आफ द आंगनवाड़ी, भारतीय युनिवर्सिटी मास्टर्स डिजरटेशन

शबनम, नसरा (2004): प्री स्कूल एजुकेशन अंडर-प्रीविलेज, चिल्ड्रन, एनसीईआरटी, नई दिल्ली

भारत सरकार (1986) राष्ट्रीय शिक्षा नीति दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय

भारत सरकार (1990) राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 की समीक्षा समिति (आचार्य राममूर्ति समिति परिप्रेक्ष्य पर्चा)दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय

भारत सरकार (1992) केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की नीति संबंधी रिपोर्ट (जनार्दन रेड्डी समिति) जनवरी 1992 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, दिल्ली

यूनेस्को यूनिसेफ (2007). अ ह्यूमन राइट बेस्ड अप्रोच टू एजुकेशन फार ऑल, न्यूयार्क: यूनिसेफ

यूनिसेफ (2007). एनुअल रिपोर्ट 2006, न्यूयार्क: यूनिसेफ

यूनिसेफ (2007). चाइल्ड सरवाइवल: द स्टेट आफ द वर्ल्ड चिल्ड्रन-2008. न्यूयार्क: यूनिसेफ

अग्रवाल, जे.सी. (1968) स्वतंत्र भारत में शिक्षा का विकास दिल्ली : आर्य बुक डिपो

कुमार, कृष्ण (2008) राज, समाज और शिक्षा इलाहाबाद : राजकमल प्रकाशन

किरण, चाँद (2004) शिक्षा : एक विवेचन, दार्शनिक एवं सामाजिक मुद्दों के परिप्रेक्ष्य दिल्ली: रवि बुक्स प्रकाशन

किरण, चाँद (1995) शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत दिल्ली : विवेक प्रकाशन

तरण, हरिवंश (2000) भारतीय शिक्षा उसकी समस्याएँ तथा विश्व की शिक्षा प्रणालियाँ नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान

सद्गोपाल, अनिल (2008) सार्वजनिक-निजी, साझेदारी' या लूट? शिक्षा-विमर्श दिल्ली : जनवरी-अप्रैल

कुमार, कृष्ण. शुक्ल, सुरेशचंद्र (2008) शिक्षा का समाज शास्त्रीय संदर्भ दिल्ली : नाइस प्रिटिंग प्रेस

रैना, विनोद (2009) शिक्षा का अधिकार कानून शिक्षा-विमर्श, दिल्ली : नवम्बर-दिसम्बर,

सद्गोपाल, अनिल (2008) शिक्षा का अधिकार बनाम भारत का भविष्य प्रारम्भ, शैक्षिक संवाद, शैक्षिक विचार एवं संवाद की पत्रिका नालंदा : पारिख ऑफसेट प्रिटिंग प्रेस, अप्रैल-जून पृ. 7-22

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

किशोर बालिकाओं की विद्यालय में नियमित उपस्थिति पर स्वच्छता संसाधनों का प्रभाव

संगीता डे*

भारत में, सरकार का संपूर्ण स्वच्छता अभियान (टी.एस.सी.) स्वच्छता में सुधार करने के लिये एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है। इसके दिशा निर्देशन में, टी एस सी ने स्वच्छता को बढ़ावा देने, महिलाओं को स्वच्छ परिसर देने और लड़कियों के लिये शौचालय बनवाने के कार्यक्रम की आवश्यकता महसूस की गई है और इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं। हालांकि, अभी तक यह विद्यालयों में मासिक धर्म की स्वच्छता सेवायें प्रदान करने पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। स्कूल में बच्चों के दाखिला में शानदार प्रगति की गयी है लेकिन स्कूल में दाखिले से परे इस दाखिले का फायदा लेने के लिये बच्चों को अपनी स्कूली शिक्षा पूरी करने की जरूरत है। कम दाखिले और अपूर्ण शिक्षा के कई कारण हैं, ध्8 में बच्चों के स्वास्थ के पोषण का स्तर भी एक जटिल पहलू (कारण) है। शिक्षा की ये बाधायें विकट रूप से गहरी हुई है। वर्तमान अध्ययन की प्रकृति खोजपूर्ण (अन्वेषणात्मक) थी और यह रेवाड़ी जिले के 2 ब्लॉक (जटुसाना और रेवाड़ी) से चुने गये स्कूलों (2 सरकारी सीनियर सेकेंडरी महिला विद्याालय और 2 सरकारी सीनियर सेकेंडरी स्कूल सह-शिक्षा) के कक्षा 6, कक्षा 7 और कक्षा 8 के 237 स्कूल जाने वाले किशोर-किशोरियों के बीच किया गया था। वर्तमान अध्ययन दिखाता है कि, हालांकि चुने गये सभी 4 स्कूलों में शौचालय की अलग सुविधाएं हैं। अधिकतर किशोरियां (लड़कियाँ) मासिक धर्म के दौरान बदलने और साफ करने के लिये शौचालय सुविधा का इस्तेमाल नहीं करती हैं, नैपकीन, शौचालय में पानी नहीं है, निपटारा करने के लिये स्थान नहीं है, साबुन उपलब्ध नहीं है और शौचालय साफ नहीं हैं इसलिए किशोरियां शौचालय सुविधा का इस्तेमाल नहीं कर रही हैं। वे जो स्कूल में शौचालय का इस्तेमाल कर रहीं

*शोधार्थी, न्यूपा, नई दिल्ली-110016

है उन्होंने बताया कि आपातकाल की स्थिति में कोई विकल्प नहीं है। वे फिर बताती हैं कि उनकी अध्यापिका इस स्थिति को महसूस करती हैं और उन्हें घर जाने की इजाजत दे देती हैं। वे बताती हैं कि वे मासिक धर्म के दौरान के प्रत्येक महीने 2 या 3 दिनों के लिये स्कूल नहीं आती हैं और लगभग सभी लड़कियां यही करती हैं।

शताब्दी विकास के लक्ष्यों (एम.जी.डी.) आकलन स्पष्ट है कि विश्व में सबको शिक्षित करने का लक्ष्य 2015 तक नहीं प्राप्त होगा। स्कूल में बच्चों के दाखिला में शानदार प्रगति की गयी है लेकिन स्कूल में दाखिले के साथ–साथ इस दाखिले का फायदा लेने के लिये बच्चों को अपनी स्कूली शिक्षा पूरी करने की जरूरत है। कम दाखिलों और अपूर्ण शिक्षा के कई कारण हैं, बच्चों के पोषण का स्तर भी एक जटिल पहलू (कारण) है। शिक्षा की ये बाधायें विकट रूप से गहरी हुई हैं। लड़कियों के लिये मुख्य प्राथमिकता, मासिक धर्म स्वच्छता की जानकारी और गरिमा के साथ प्रबंध करने के लिये सुविधायें और सांस्कृतिक वातावरण की आवश्यक है। वाटर एड (2007) के अनुसार पानी, सफाई के उपयोग और पर्यावरणीय स्थिरता स्वास्थ्य, शिक्षा, गरीबी को कम करने और लिंग की समानता के विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के बीच संबंध स्थापित किया गया है। विकासशील देशों मे सफाई का क्षेत्र अन्य क्षेत्रों उपेक्षित है।

भारत में, सरकार का संपूर्ण स्वच्छता अभियान (टी.एस.सी.) स्वच्छता में सुधार करने के लिये एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है। इसके दिशा निर्देशन में, टी एस सी ने स्वच्छता को बढ़ावा देने, महिलाओं को स्वच्छ परिसर देने और लड़कियों के लिये शौचालय बनवाने के कार्यक्रम की आवश्यकता महसूस की। हालांकि, अभी तक यह मासिक धर्म की स्वच्छता सेवायें प्रदान करने पर ध्यान नहीं देता है। एक लड़के/लड़की का एक स्कूल में दाखिला लेना उनका स्थायी रूप से स्कूल में रूकना पूरी तरह से सुनिश्चित नहीं करता है। संस्था के अन्दर दी जाने वाली शिक्षा की क्वालिटी का उपयोग करने के लिये आवश्यक/इच्छित मूलभूत आवश्यकतायें, जरूरी सुविधायें और स्कूल के वातावरण को एक साथ जोडना है। इस पृष्ठभूमि के साथ इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पानी की स्वच्छता और सफाई (वाश) और किशारियों की विशेष परिस्थितियों में निपटने के लिये स्कूल की तैयारी और प्रंबंध का पता लगाना था।

साहित्य और समीक्षा

अध्ययन में फोकस ग्रुप डिस्कशन के दौरान, बहुत सी लड़कियों से पता चला कि जब वे मासिक धर्म के दौरान स्कूल जाती थीं तो इस चिंता के कारण अच्छा प्रर्दशन नहीं कर पाती थी कि लड़को को उनकी परिस्थिति के बारे में पता चल जायेगा। (नेपाल में वाटर एड 2009)। बग्लादेश, भारत और नेपाल में स्कूल में पानी, सफाई के संबंध में कोई

व्यापक आंकड़े नहीं हैं, लेकिन जो साक्ष्य हैं वे यह बताते हैं कि ज्यादातर सुविधायें पर्याप्त नहीं हैं। यूनिसेफ और बंगलादेश सरकार के 4300 प्राथमिक विद्यालयों के एक अध्ययन में यह पाया गया कि 47 प्रतिशत स्कूलों में पानी की सुविधा नहीं थी, 53 प्रतिशत में लड़कियों के लिये अलग से शौचालय नहीं थे और स्कूलों में औसतन 152 लोगों के लिये एक शौचालय था। (नाहर और अहमद 2006)। स्कूलों में खराब व्यक्तिगत स्वच्छता और असुरक्षित सफाई की परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप लड़कियां स्त्री रोग संबंधित अनेक समस्याओं का सामना कर रही हैं। (भाटिया आदि 1995)। भारद्वाज और पाटकर (2004) के अनुसार, एम.डी.जी. 7 के संबंध में खासतौर पर सरकारी कार्यक्रमों में मासिक धर्म स्वच्छता एक अपर्याप्त रूप से स्वीकार्य समस्या प्रतीत होती है। अध्ययन में यह भी खुलासा हुआ है कि यद्यपि विकासशील देशो में सफाई की खराब व्यवस्था स्कूल में लड़कियों की अनुपस्थिति और स्कूल छोड़ देने से जुड़ी हुई है, इस समस्या के समाधान के लिये स्कूल में शौचालय के डिजाइन और निर्माण में मासिक धर्म की समस्या के प्रबंध (समाधान) पर ध्यान नहीं दिया गया है।

कार्य प्रणाली

वर्तमान अध्ययन (स्टडी) की प्रकृति खोजपूर्ण (अन्वेषणात्मक) थी और यह रेवाड़ी जिले के 2 ब्लॉक (जटुसाना और रेवाड़ी) से चुने गये स्कूलों (2 सरकारी सीनियर सेकेंडरी महिला विद्याालय और 2 सरकारी सीनियर सेकेंडरी स्कूल सह-शिक्षा) के कक्षा 6, कक्षा 7 और कक्षा 8 के 237 किशोर-किशोरियों के बीच किया गया था। क्वालिटेटिव और क्वांटिएटिव दोनो डाटा अच्छी तरह से परिभाषित संकेतकों के साथ एकत्र किये गये थे। विद्यार्थियों के लिये एफजीडी, शिक्षकों और माता-पिता के लिये इंटरव्यू और स्कूल की जानकारी के लिये अवलोकन (ऑब्जर्वेशन) कार्यक्रम आयोजित किया गया था।

विश्लेषण

मासिक धर्म की जानकारी और प्रथा संबंधी स्वच्छता से जुड़े प्रश्नों की प्रश्नावली (क्वेश्चनेयर) मुख्य रूप से 'क्लोज्ड-एन्ड' आधार पर बनाया गया था। पूर्व-परीक्षण के परिणामों को शामिल करने से पहले अनुसंधान के साधनों को संशोधित किया गया था। किशोरियों के अधिकार की रक्षा करने के क्रम में, विस्तृत इंटरव्यू (साक्षात्कार) के लिये उनसे संपर्क करने से पहले इंटरव्यू में भाग लेने के लिये उनकी अनुमति ली गयी थी। इंटरव्यू के दौरान पूरी गोपनीयता रखी गयी थी और किसी भी दशा में यदि वे जवाब नहीं देना चाहती थीं तो जानकारी देने के लिये उन पर कोई दबाव नहीं डाला गया था। इंटरव्यू ऐसी परिस्थिति में किये गये थे जिसमें किशोरियां जवाब देने में पूरी तरह से सहज महसूस करें।

परिणाम और चर्चा

स्कूलों में सफाई (वाश) के वर्तमान स्तर को जानने के लिये विभिन्न साधनों का इस्तेमाल किया गया था और उनके बीच के संबंधों का पता लगाने की भी कोशिश की गयी थी।

वर्तमान अध्ययन दिखाता है कि, हालांकि चुने गये सभी 4 स्कूलों में शौचालय की अलग सुविधाये हैं अधिकतर किशोरियों (लड़कियाँ) मासिक धर्म के दौरान नैपकिन बदलने और साफ करने के लिये शौचालय सुविधा का इस्तेमाल नहीं करती हैं। शौचालय में पानी नहीं, निपटारा करने के लिये स्थान नहीं, साबुन उपलब्ध नहीं है, अस्वच्छता किशोरियों द्वारा बताये गये विभिन्न कारणों में मुख्य कारण थी जिनके कारण वे शौचालय सुविधा का इस्तेमाल नहीं कर रही हैं। जो स्कूल में शौचालय का इस्तेमाल कर रही हैं उन्होंने बताया कि आपातकाल की स्थिति में कोई विकल्प नहीं है। इसी पंक्ति में एफ.जी.डी. के दौरान सभी किशोरियों ने बताया कि मासिक धर्म के दौरान वे स्कूल में आरामदायक नहीं महसूस करती हैं क्योकि वहां पर वे सुविधायें नहीं उपलब्ध हैं जो उनके जीवन को आसान बनाती हैं। पानी न होना, अस्वच्छ शौचालय, निपटारा करने के लिये स्थान न होना, और यदि आपको सैनेटरी नैपकिन की आवश्यकता होती है तो स्कूल में कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है, ऐसी स्थिति में वे प्रत्येक महीने 2 या 3 दिन घर में बैठना पसंद करती हैं। वे फिर से बताती हैं कि उनकी अध्यापिका स्थिति को महसूस करती हैं और उन्हें घर जाने की इजाजत दे देती हैं, वे बताती हैं कि वे मासिक धर्म के दौरान प्रत्येक महीने 2 या 3 दिनों के लिये स्कूल छोड़ती हैं और लगभग सभी लड़कियां यही करती हैं। यही आंकड़े हमें नेपाल में वाटर एड (2009) के अध्ययन के दौरान मिले, जहां सिर्फ 42 प्रतिशत लड़कियां पर्याप्त गोपनीयता के साथ शौचालय का इस्तेमाल करती हैं। लड़कियों की शिक्षा पर यूनिसेफ रिपोर्ट 2012 के अनुसार भारत में सात लाख ग्रामीण स्कूलों में से 6 में से सिर्फ 1 बच्चा खासतौर पर लड़की शौचालय के भय से स्कूल नहीं जाती हैं। वर्तमान अध्ययन दिखाता है कि लड़कियों में मासिक धर्म संबंधी स्वास्थ समस्याओं के कारण 93.7% लड़कियों की अनुपस्थिति पायी गयी, उनमें से 21 प्रतिशत लड़कियां मासिक धर्म के दौरान स्कूल छोड़ती हैं और 73% ने बताया कि वे कभी-कभी स्कूल छोड़ती हैं, और पता चला है कि अस्वच्छ परिस्थितियां लड़कियों की स्कूल में अनुपस्थिति का मुख्य कारण है। इसी तरह से वाटर एड (2009) पर नेपाल द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण में आधे से अधिक उत्तरदाताओं ने मासिक धर्म को अनुपस्थित रहने का एक कारण बताया। उन कारणो में से जो अनुपस्थित रहने के कारक हैं उनमें सबसे मुख्य कारण सफाई के लिये गोपनीयता की कमी, उसके बाद निपटारे की प्रणाली और

पानी की सप्लाई की उपलब्धता की कमी है। मासिक धर्म के दौरान लड़कियों के स्कूल में अनुपस्थिति सभी जगहों पर देखी जा सकती है और बांग्लादेश, यूनिसेफ, (2008), सान्याल एस और रे एस द्वारा पश्चिम बंगाल में किये गये अध्ययन में भी और पथानामथिटटा, केरला में क्रिस्टीना जे (2008) द्वारा किये गये अध्ययन में भी पायी गयी थीं।

मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन स्कूल काउंसिल ने तमिलनाडु के कई स्कूल में सर्वोत्तम हस्तक्षेप किया है जिसने स्कूल जाने वाली कई लड़कियों को मित्र-समूह की सहायता प्रदान की। स्कूल में स्वच्छता के कुछ सकारात्मक प्रभाव 1990 के अन्त में बांग्लादेश में कुछ प्रारंभिक साक्ष्य मिले थे, जिसने दिखाया कि शौचालय के प्रावधान के परिणाम स्वरूप लड़कियों के पंजीकरण में वृद्वि हुई थी। अध्ययन के दौरान अधिक जानकारी पाने के लिये 4 सरकारी उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में 12 शिक्षिकाओं के भी इंटरव्यू किये गये थे, उनसे सफाई की सुविधाओं की उपलब्धता और लड़कियों के स्वास्थ के मुद्दों पर काम करने के तरीकों के बारे में पूछा गया था। लगभग सभी अध्यापिकाएं इस पर सहमत थीं कि किशोर लड़कियों के लिये उपलब्ध सुविधायें उपयुक्त नहीं हैं। आगे जब किशोरियों को सहयोग करने के लिये स्कूल की तैयारियों के बारे में पूछा गया तो लगभग सभी अध्यापिकाओं ने बताया कि आमतौर पर स्कूल में नैपकिन रखने का कोई सिद्वान्त नहीं है। 2 स्कूलों में उन्होने बताया कि हरियाणा के स्वास्थ विभाग द्वारा पिछले साल में सिर्फ एक बार नैपकिन का वितरण किया गया था। कुछ शिक्षिकाओं ने बताया कि आपातकाल के मामले में वे लड़कियों को व्यक्तिगत रूप से नैपकिन प्रदान करती हैं क्योंकि वे उन्हें इस प्रकार की स्थिति में ऐसे ही नहीं छोड़ सकती हैं। लगभग सभी अध्यापिकाएं इस बात से सहमत थीं कि कक्षा 7, कक्षा 8, और कक्षा 9 की लड़कियां उन्हें अक्सर संपर्क करती हैं। उन्होने बताया कि लड़कियां मासिक धर्म के बारे में जानने की बहुत इच्छुक होती हैं। वे नैपकिन पाने के लिये उनसे संपर्क भी करती हैं लेकिन उनके पास इस प्रकार के स्रोत नहीं हैं जिससे वे उनकी मदद नहीं कर पाती हैं।

इसके अतिरिक्त, जब उनसे पूछ गया कि वे उन लड़कियों के साथ कैसा व्यवहार करती है जिन्होंने हाल ही में किशोरावस्था में प्रवेश किया है, तो लगभग सभी शिक्षिकाओं ने बताया कि, कक्षा 6, और कक्षा 7, की लड़कियां बहुत दयनीय हालात में होती हैं। उन्हें इसके बारे में बताने वाला कोई भी नहीं होता है और उनके पाठ्यक्रम में भी इस तरह के विषय को शामिल नहीं किया गया है। इस कारण वे खुद भी नहीं जान पाती हैं कि उनके साथ क्या हो रहा है। कभी-कभी शिक्षिकाएं उन लड़कियों को पहचानती हैं जब वे उन

लड़कियों के कपड़ों पर दाग देखती हैं।

जब उनसे पूछा गया कि क्या लड़कियां अस्वच्छ परिस्थितियों के कारण स्वयं को स्कूल में अनुपस्थित रखती हैं। तो ज्यादातर अध्यापिकाओं ने यह स्वीकार किया और उनको ऐसा करने के लिये प्रोत्साहित भी किया लेकिन उनमें से कुछ ने यह स्वीकार नहीं किया कि लड़कियां इन परिस्थितियों के कारण अनुपस्थित होंगी। उच्च स्तर पर जब ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर प्रधानाचार्या से उनकी राय देने के लिये कहा गया, तो उन्होंने यह स्वीकार किया कि स्कूल में संचालन और रखरखाव की समस्या है जिन्हें सुधार करने की आवश्यकता है, और विभिन्न क्षेत्रों जैसे स्वास्थ, लोक निर्माण, वित्त, स्थानीय प्रशासन और जल आपूर्ति प्राधिकारियों में परस्पर संप्रेषण की कमी है, साथ ही साथ यह भी अनुभव किया गया कि इस संबंध में समाज में अधिक खुलापन न होने के कारण यह एक ऐसा मुद्दा नहीं है जिसकी सार्वजनिक मंच पर चर्चा की जाये।

निरीक्षण के दौरान यह पाया गया कि शौचालय मासिक धर्म वाली लड़कियों के लिये न्यूनतम वांक्षित स्वच्छता बनाये रखने के लिये उपयुक्त नहीं थे। गोपनीयता की कमी, शौचालय के अन्दर और नजदीक पानी की अनुपलब्धता, डस्टबीन न होना, अस्वच्छता और शौचालय की सफाई के लिये कोई कर्मचारी न नियुक्त करना कुछ कारक थे जिन्होंने मासिक धर्म के दौरान स्कूल को लड़कियों के लिये बहुत असुविधाजनक बना दिया था। वर्धा, महाराष्ट्रा में अध्ययन के दौरान यही निष्कर्ष मिले थे जो बताते हैं कि अस्वच्छ परिस्थितयां लड़कियों के स्कूल से अनुपस्थित रहने का मुख्य कारण है।

इसलिये यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि वे स्कूल में रूकें, अच्छा प्रदर्शन करें और अपनी किशोरावस्था का आनंद ले तो उसके लिए आधारभूत आवश्यकताओं को पहचानने की जरूरत है। सिर्फ किशोरियों के लिये अलग शौचालय प्रदान करना पर्याप्त नहीं होगा, उपयुक्त आधारभूत सुविधाओं के साथ मूलभूत सुविधायें जैसे साफ-सफाई के लिये पर्याप्त स्थान और सामग्री साथ ही साथ साफ करने और धुलने के लिये पानी का प्रबंध करने की आवश्यकता होगी।

निष्कर्ष और सिफारिश

प्रस्तुत अध्ययन में किशोरियों की मासिक धर्म के बारे में सही और पर्याप्त जानकारी प्राप्त करने और इसके उचित प्रबंध पर प्रकाश डाला गया है। इन समस्याओं के बारे में विकास कर्मियों, नीति-निर्माताओं, समुदायों की राय और उचित समाधान की कमी, यह बताती है कि साफ-सफाई संबंधी सेवाओं में मासिक धर्म की स्वच्छता को या तो सप्लाई या मांग में प्राथमिकता नहीं दी गयी है। अत: ये विकास के उस लक्ष्य की प्राप्ति को

प्रभावित कर सकते हैं जिसके लिये विकास के राष्ट्रीय या अर्न्तराष्ट्रीय लक्ष्यों के द्वारा सरकारें, दानकर्ता और एजेंसी प्रतिबद्व हैं।

इसके अलावा स्कूल में उचित व्यवस्था प्रदान करने के प्रयास जरूरी हैं। प्रयासों का मतलब आधारभूत सुविधाओं के लिये हमेशा बड़े निवेश करना नहीं होता है, लेकिन अनेक परिस्थितियों में, शौचालय, पानी की आपूर्ति और कचरे के निपटारे जैसी स्वच्छता की बुनियादी सुविधाओं के छोटे-छोटे मुद्दों पर ध्यान देना ही पर्याप्त होता है। यह केवल सोच समझ कर संसाधनों के प्रबंधन और पैदा हुई समस्याओं को सुलझाने के बारे में है। इस तरह के छोटे-छोटे उपाय निश्चित रूप से स्कूल में मासिक धर्म स्वच्छता के लिये सहायक वातावरण प्रदान कर सकते हैं।

- स्कूलों में पानी और साफ-सफाई की स्थायी सुविधाएं प्रदान करने के लिये शिक्षा मंत्रालयों के राजनीतिक नेतृत्व और साथ ही साथ संबंधित मत्रालयों जैसे स्वास्थ्य, लोक निर्माण, वित्त, स्थानीय प्रशासन और जल आपूर्ति प्राधिकारियों को एक साथ मिलकर काम करने की जरूरत है।
- परस्पर संप्रेषण और समन्वय के औपचारिक और साथ ही साथ अनौपचारिक कार्य प्रणाली पर बल देने की जरूरत है।
- अध्यापिकाओं को मासिक धर्म स्वच्छता और प्रजनन स्वास्थ्य की शिक्षा प्रशिक्षण हुनर (गुण) नहीं है। उनको कार्यशैली या प्रशिक्षण के द्वारा प्रशिक्षित करने की जरूरत है।
- स्कूलों को लड़कियों की जरूरतों (स्वच्छता की प्रकिंयाओं के बारे में सही जानकारी के साथ-साथ पानी, स्वच्छ शौचालय, नैपकिन, डस्टबिन, हाथ धोने की सामग्री आदि) की व्यवस्था करने में सक्षम होना चाहिये जिससे पढ़ाने और पढ़ने की प्रक्रिया पर इसके कम नकारात्मक प्रभाव पड़े।

सीमाएं

अध्ययन के लिये यूनिट्स और उत्तरदाताओं का चयन परपजिव (सोद्देश्य) था और हो सकता है कि इसमें जनसंख्या का भौगोलिक वितरण प्रदर्शित न हो, इसलिये हो सकता है कि इस अध्ययन के निष्कर्ष व्यापक न हों, हालांकि इस अध्ययन से चिह्नत किये गये मुख्य मुद्दे मासिक धर्म की स्वच्छता के नीति, योजना और कार्यान्वयन में मार्गदर्शी साबित होंगे।

संदर्भ

अधिकारी पी. आदि (2007) नेपाल की काठमांडू यूनिवर्सिटी मेडिकल जर्नल, पीपी 382. 386, वैल्यूम 5, नं. 3, इशू 19 के ग्रामीण किशोर लड़कियों के मासिक धर्म स्वच्छता के बारे में ज्ञान और प्रथाएं

अहमद, आर, और के यासमीन (2008) 'मासिक धर्म स्वच्छता: ब्रेकिंग द साइलेंस', इन विकेन एट आल। (एडस) निर्माण के अलावा सबके द्वारा इस्तेमाल किया जाता है, आईआरसी इंटरनेशनल वाटर एण्ड सैनिटेशन सेंटर और वाटर एड

भारद्वाज, एस एण्ड ए। पाटकर (2004) मासिक धर्म और विकासशील देशों में विकास: टेकिंग स्टॉक, मुम्बई: जंक्शन स्कूल

दासगुप्ता, ए और एम शंकर (2008) 'मासिक धर्म स्वच्छता: किशोर लड़कियां कितनी स्वच्छ है?'

इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन 33(2):77-80

धींगरा, आर, ए. कुमार और एम. कौर (2009) जनजाति (गुज्जर) किशोर लड़कियों के बीच 'मासिक धर्म और प्रथाओं के संबंध में ज्ञान और प्रथायें', एथनो मेडिसिन 3(1): 43.48 पर अध्ययन

फर्नांडीस, एम (2008) 'द अन्टोल्ड स्टोरी-मासिक धर्म स्वच्छता: जानकारी और प्रथाओं के मुद्दे', सफाई पर तीसरी दक्षिण एशियन कॉन्फ्रेंस दिल्ली, भारत, 19-21 नवंबर 2008 में पेपर प्रस्तुत किया

जोशी, डी और फॉसेट, बी (2001) 'वाटर, हिन्दू कार्य माइथोलॉजी एण्ड एन अनइक्यूवल सोशल ऑर्डर इन इंडिया' इंटरनेशनल वाटर हिस्ट्री एसोसियेशन, बर्गन, नार्वे, अगस्त 2001 में पेपर प्रस्तुत किया

नाहर, क्यू और आर अहमद (2006) 'एड्रेसिंग स्पेशल नीड्स ऑफ गर्ल्स चैलेंज इन स्कूल्स', सफाई पर दूसरी साउथ एशियन कॉन्फ्रेंस इस्लामाबाद, पाकिस्तान, 19-22 सितम्बर 2006 में पेपर प्रस्तुत किया

टेन, वी टी ए (2007) मासिक धर्म स्वच्छता: ए नेग्लेक्टेड कंडीशन फॉर द एचीवमेंट ऑफ सेवरल मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स, यूरोप एक्टरर्नल पॉलिसी एडवाइजर्स

यूनिसेफ एण्ड वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनइजेशन (2008) पीने के पानी और सफाई परयूनिसेफ एण्ड वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनइजेशन स्कूल

'ग्लोबल कॉस' वाटर एड सहस्राब्दि सहायता प्रणाली विकास के लक्ष्यों को कम करने को कैसे प्रभावित करता है

नेपाल में वाटर एड (2009) क्या मासिक धर्म स्वच्छता और प्रबंधन किशोर लड़कियों के लिये एक समस्या है? नेपाल के अलग स्थानों में चार स्कूलों में एक तुलनात्मक अध्ययन, नेपाल में वाटर एड

नेपाल में वाटर एड (2009बी) देखा गया लेकिन सुना नहीं गया? पानी और सफाई की सेवाओं के प्रावधान पर, लैंगिक पहुंच, नेपाल में वाटर एड

वाटर एड और टियर फंड (2008) स्वच्छता और पानी हमें वाटर एउ और टियर फंड के लिये कार्यवाही करने के लिये एक ग्लोबल फ्रेमवर्क की जरूरत क्यों है

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

विद्यालयीय शिक्षा स्तर पर आवासीय एवं गैर आवासीय विद्यार्थियों के समायोजन का अध्ययन

सुभाष सिंह*

सार संक्षेप

प्रस्तुत शोधपत्र यह जानने का प्रयास किया गया है कि आवासीय एवं गैर आवासीय छात्र-छात्राओं के समायोजन में कोई अन्तर तो नहीं है। और अगर है, तो वह क्यों है? समायोजन की क्षमता व्यक्ति के व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है। व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती हैं और वह अपने वातावरण एवं परिस्थितियों से समायोजन करने का प्रयास करता है। जो व्यक्ति वातावरण एवं परिस्थितियों से अपने को समायोजित कर लेता है, वह प्रसन्न रहता है और जो समायोजन स्थापित नहीं कर पाता वह असंतोष, कुण्ठा, द्वन्द, एवं तनाव का शिकार हो जाता है और वह अपने लक्ष्य से भटक जाता है जिसका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। समाज परिवर्तनशील है और इसके कारण नित्य नई समस्याएं उत्पन्न होती रहती हैं।

प्रस्तावना

शिक्षा द्वारा मानव को ज्ञानवान, कला-कौशल युक्त और सभ्य बनाया जाता है। यह माता के समान पालन पोषण करती है, पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने कार्यों में लगाती है तथा पत्नी की भाँति सांसारिक चिन्ताओं को दूर करके प्रसन्नता प्रदान करती है। शिक्षा के ही द्वारा हमारी कीर्ति का प्रकाश चारों ओर फैलता है, कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल उठता है तथा सूर्य अस्त होने पर कुम्हला जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर प्रत्येक व्यक्ति कमल

*सहायक प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र विभाग, रणवीर रणञ्ज्य स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, अमेठी

के फूल की भाँति खिल उठता है तथा अशिक्षित रहने पर दरिद्रता, शोक एवं कष्ट के अन्धकार में डूबा रहता है।

वैदिक काल में शिक्षा गुरुकुलों तथा आश्रमों में दी जाती थी। शिष्य गुरु के समीप रहकर ज्ञान प्राप्त करता था। ये गुरुकुल तथा आश्रम नगर से दूर शान्त वातावरण में होते थे। समय व्यतीत होने के साथ-साथ गैर आवासीय विद्यालय भी अस्तित्व में आये। वर्तमान समाज में आवासीय तथा गैर आवासीय, दोनों प्रकार के विद्यालयों के पक्ष में विद्वानों के अपने-अपने तर्क हैं। रविन्द्रनाथ टैगोर आवासीय विद्यालय के पक्षधर थे, उनका विश्वास था कि शान्त पर्यावरण में ही शिक्षक और शिक्षार्थी शिक्षा की साधना कर सकते हैं। छात्र को गुरु का सान्निध्य हर-पल मिलता रहता है। टैगोर द्वारा स्थापित विश्व भारती विश्वविद्यालय इन सब भावनाओं का मूर्त रूप उपस्थित कर रहा है। सरकार ने भी प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा के लिये नवोदय विद्यालय की स्थापना की है, जो एक आवासीय विद्यालय है। इसके विपरीत दूसरा मत है कि विद्यालय का वातावरण कृत्रिम होता है और वहाँ पर मानव जीवन की वह विविधता और स्वभाविकता नहीं दिखाई पड़ती है, जो एक सामाजिक प्राणी के लिये आवश्यक है। वास्तविक जीवन का ज्ञान उन विद्यार्थियों को अधिक अच्छा होगा, जिन्हें नित्य प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल तथा अवकाश के दिन घर पर रहने का अवसर मिलता है। परिवार में विभिन्न अवस्था, स्वभाव तथा विचारों के स्त्री और पुरुष होते हैं। इससे बालक और बालिकाओं को उक्त प्रकार के वातावरण में अपने को समायोजित करने की शिक्षा प्राप्त हो जाती है, जबकि आवासीय विद्यालय के छात्रों में अहंकार कठोरता तथा अलगाव के दुर्गुण आ जाते हैं। समायोजन की क्षमता व्यक्ति के व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है। व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती हैं और वह अपने वातावरण एवं परिस्थितियों से समायोजन करने का प्रयास करता है। जो व्यक्ति वातावरण एवं परिस्थितियों से अपने को समायोजित कर लेता है, वह प्रसन्न रहता है और जो समायोजन स्थापित नहीं कर पाता वह असंतोष, कुण्ठा, द्वन्द, एवं तनाव का शिकार हो जाता है और वह अपने लक्ष्य से भटक जाता है जिसका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। समाज परिवर्तनशील है और इसके कारण नित्य नई समस्याएं उत्पन्न होती रहती हैं। इन समस्याओं के प्रति अपने को समायोजित करने के लिये समायोजन क्षमता का होना आवश्यक होता है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य भी व्यक्ति को इस योग्य बनाना है, जिससे वह समाज में अपने को भली भाँति समायोजित कर सके। व्यक्ति को व्यवस्थित

एवं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए परिस्थितियों से समायोजन करना आवश्यक होता है। व्यक्ति में समायोजन की प्रक्रिया घर से प्रारम्भ होती है और यह जीवन पर्यन्त चलती रहती है। वह जहाँ भी जाता है अथवा रहता है उसे वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुसार अपने को समायोजित करना पड़ता है। व्यक्ति की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि उसका समायोजन समाज एवं वातावरण से समुचित रूप से हो। शिक्षा इस उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायता करती है। मानव व्यवहार में परिवर्तन लाना एवं उसका शोधन करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होता है।

जार्ज (1966) ने अपने अध्ययन ''ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ द एड्जेस्टमेण्ट एचीवमेण्ट ऑफ टेन इयर्स एण्ड इलेवन इयर्स स्कूलिंग इन केरला स्टेट'' में पाया कि शिक्षकों द्वारा प्रदान किये जाने वाले शिक्षण, प्रशिक्षण, प्रेम और सौहार्द तथा उत्साहवर्धन से छात्र एवं छात्रायें कक्षा में समान रूप से प्रभावित होते हैं। छात्रों की उन्नति, विकास एवं शैक्षिक उपलब्धि उनके माता-पिता की शैक्षिक आर्थिक और सामाजिक स्तर से भी जुड़ी होती है। तीक्ष्ण बुद्धि वाले बालक सामान्य बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा विद्यालयी परिवेश में शीघ्र एवं अच्छी तरह से अपने आपको समायोजित कर लेते हैं। गोस्वामी, (1978) ने अपने अध्ययन ''ए स्टडी ऑफ द कॉन्सेप्ट ऑफ एडॉलसेण्ट्स एण्ड इट्स रिलेशनशिप विद् स्कॉलास्टिक एचीवमेण्ट एण्ड एडजस्टमेण्ट'' में पाया कि-पुरुष विद्यार्थियों को महिला विद्यार्थियों की अपेक्षा घर और समाज के द्वारा प्रोत्साहन, पुनर्बलन और सुरक्षा ज्यादा मिलती है। जमुना, (1985) ने अपने अध्ययन ''ए स्टडी ऑफ सम फैक्टर्स रिलेटेड टू एडजस्टमेण्ट ऑफ मिडिल एज्ड एण्ड ओल्डर वोमेन'' में पाया कि मध्यम उम्र की महिला और प्रौढ़ महिला की समायोजन क्षमता में सार्थक अन्तर होता है। मध्यम उम्र की महिला और प्रौढ़ उम्र की महिला के क्रियाकलापों, पति-पत्नी के बीच संवादों, यौन संतुष्टियों और वैवाहिक स्तरों के मध्य सार्थक अन्तर होता है और ये ही उनकी समायोजन क्षमता को तय करते हैं।

गुप्ता, (1988) ने अपने अध्ययन ''ए स्टडी ऑफ द कॉन्सेप्ट ऑफ इण्टेलीजेन्स एडजस्टमेण्ट एण्ड पर्सनॉलिटी नीड्स ऑफ इफेक्टिव टीचर्स इन साइन्स एण्ड आर्टस'' में पाया कि सभी अध्यापक 30 से 39 वर्ष की उम्र में अच्छी तरह शिक्षण कार्य करते हैं। विज्ञान वर्ग के अध्यापक कला वर्ग के अध्यापकों से बौद्धिक स्तर में अधिक श्रेष्ठ हैं। कला वर्ग के अध्यापक विज्ञान वर्ग के अध्यापकों की अपेक्षा सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और वातावरण के प्रति बेहतर समायोजन आसानी से कर लेते हैं।

गोयल (1988) ने अपने अध्ययन ''इफेक्ट ऑफ ट्राइल, फस्ट्रेशन एण्ड एडजस्टमेण्ट ऑन लर्निंग एण्ड स्पीड ऑफ परफारमेन्स विद् स्पेशल रेफेन्स टू इण्टरैक्शन में पाया कि स्कूल जाने वाली महिला किशोरी में सीखने और कार्य के प्रति रुचि अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। विद्यार्थियों का पारिवारिक वातावरण तथा उनका स्वास्थ्य व उनका सीखना- कार्य सम्पादन की गति के साथ-साथ उनके शैक्षिक और भावपूर्ण समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मुलिया, (1990) ने अपने अध्ययन 'ए स्टडी ऑफ द कान्सेप्ट आफ एडॉलसेण्ट्स एण्ड इट्स रिलेशनशिप विद् स्कॉलास्टिक एचीवमेंट एण्ड एडजस्टमेण्ट'' में पाया कि छात्रों द्वारा कामर्स, कला और विज्ञान वर्ग को लेकर आगे बढ़ने में नेतृत्व के व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। पुरुष छात्र और महिला छात्र के नेतृत्व व्यवहार में सार्थक अन्तर होता है। विषय, लिंग और समायोजन में सार्थक अन्त:क्रिया प्रभावी नहीं होता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

बालक के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। यही शिक्षित बालक आगे चलकर शिक्षित समाज का निर्माण करते हैं। वर्तमान समय में तीन प्रकार की शिक्षा प्रणाली प्रचलित है-औपचारिक शिक्षा,अनौपचारिक शिक्षा एवं निरौपचारिक शिक्षा। औपचारिक शिक्षा समाज में दो प्रकार की संस्थाओं के माध्यम से दी जा रही है। आवासीय विद्यालय द्वारा और गैर आवासीय विद्यालय द्वारा। संसार में वैयक्तिक विभिन्नतायें सर्वव्याप्त हैं। इसीलिये कक्षा को वैयक्तिक समस्याओं का जटिल जाल कहा गया है। कक्षा में छात्रों के व्यवहार, सफलता, असफलता विचार-धाराओं एवं उसकी विषय के प्रति रुचि व अरुचि में प्राय: देखा जाता है कि कोई छात्र शैक्षिक वातावरण में अपने को समायोजित कर लेता है तो कोई अपने को समायोजित नहीं कर पाता है। फलत: उसमें निराशा, कुंठा आदि का जन्म होता है और उसका जीवन समस्याग्रस्त हो जाता है। यही बात शैक्षिक वातावरण के अतिरिक्त समायोजन के अन्य क्षेत्रों जैसे- भावात्मक तथा सामाजिक समायोजन में भी देखने को मिलती है। माध्यमिक स्तर के एक छात्र को अपने भविष्य के निर्माण हेतु विषयों का चयन करना होता है। फलत: व्यक्तित्व विकास हेतु समायोजन का महत्व अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है तथा इस समायोजन में आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यालयों के वातावरण का क्या योगदान होता है, इसी समस्या ने शोधकर्त्री को माध्यमिक स्तर पर आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के समायोजन संबंधी विषय-वस्तु का अध्ययन करने के लिये प्रेरित किया।

तकनीकी शब्दों का परिभाषीकरण

माध्यमिक स्तर : माध्यमिक स्तर के अन्तर्गत ऐसे छात्र आते हैं, जो 14–16 वर्ष आयु वर्ग के हों तथा इस दौरान कक्षा 9–10 की शिक्षा ग्रहण करते हों।

आवासीय विद्यालय : आवासीय विद्यालय से तात्पर्य ऐसे विद्यालय से है जिसमें विद्यार्थी विद्यालय में रहकर शिक्षा ग्रहण करते हैं और उनकी सभी आवश्यकता यथा– भोजन, कपड़ा, किताब इत्यादि, सब कुछ विद्यालय की तरफ से मिलता है। जैसे– जवाहर नवोदय विद्यालय, कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय।

गैर आवासीय विद्यालय : गैर–आवासीय विद्यालय से तात्पर्य ऐसे विद्यालयों से है, जिसमें विद्यार्थियों को शिक्षा ग्रहण करने के लिये अपने घर से विद्यालय आना–जाना पड़ता है तथा सभी आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति स्वयं करनी पड़ती है। जैसे– पब्लिक स्कूल।

समायोजन : समायोजन को सामंजस्य, व्यवस्थापना या अनुकूलन, भी कहते हैं। समायोजन दो शब्दों को मिलाकर बना है, सम+आयोजन। सम का अर्थ है, भलीभाँति अच्छी तरह या समान रूप से और आयोजन का अर्थ है व्यवस्था अर्थात अच्छी व्यवस्था करना। अतएव समायोजन का अर्थ हुआ सुव्यवस्था या अच्छे ढंग से परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया, जिससे व्यक्ति की आवश्यकतायें पूर्ण हो जायें, और उनके अन्दर मानसिक द्वन्दता उत्पन्न न होने पाये।

समस्या

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक ''माध्यमिक स्तर के आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यालय में अध्ययनरत् छात्रों एवं छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन''है।

अध्ययन के उद्देश्य :

- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के भावात्मक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के शैक्षिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सम्पूर्ण समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के भावात्मक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के शैक्षिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सम्पूर्ण समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के भावात्मक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवसीय विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के सम्पूर्ण समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शून्य परिकल्पना

- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के भावात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के शैक्षिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सम्पूर्ण समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के भावात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के शैक्षिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सम्पूर्ण समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के भावात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के सम्पूर्ण समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत शोध में प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण करके परिणाम प्राप्त किया गया है। समस्याओं का विश्लेषण परिकल्पनाओं के क्रमानुसार किया गया है। प्रत्येक परिकल्पना के परिणाम की जानकारी को दर्शाने के लिये तालिकाओं का प्रयोग किया गया है।

तालिका-1

आवासीय छात्र-छात्राओं का आवृत्ति वितरण, मध्यमान एवं मानक विचलन

वर्ग-अन्तराल (C.I.)	आवासीय छात्र (f_1)	आवासीय छात्रायें (f_1)
39.43	–	01
34.38	–	0
29.33	7	0
24.28	02	01
19.23	09	02
14.18	06	11
9.13	03	07
4.8	05	03
मध्यमान (m)	16	15.2
मानक विचलन (✓)	6.33	7.03

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि आवासीय छात्रों का मध्यमान 16 तथा आवासीय छात्राओं का मध्यमान 15.2 है। अत: आवासीय छात्र-छात्राओं दोनों का समायोजन औसत है। आवासीय छात्रों का मानक विचलन 6.33 तथा आवासीय छात्राओं का मानक विचलन 7.03 है। अत: हम कह सकते हैं कि छात्र-छात्राओं में वैयक्तिक विभिन्नता अधिक है।

तालिका-2

गैर आवासीय छात्र-छात्राओं का आवृत्ति वितरण, मध्यमान एवं मानक विचलन

वर्ग-अन्तराल (C.I.)	आवासीय छात्र (f_1)	गैर-आवासीय छात्रायें (f_1)
34.39	–	1
30.34	1	1
25.29	0	1
20.24	4	5
15.19	9	3
10.14	7	5
5.9	4	9
मध्यमान (m)	15.4	15.2
मानक विचलन (✓)	5.78	8.47

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गैर आवासीय छात्रों का मध यमान 15.4 तथा 15.2 हैं तथा इनके मानक विचलन क्रमश: 5.78 तथा 8.47 हैं। अत: हम कह सकते हैं कि गैर आवासीय छात्र-छात्राओं, दोनों का समायोजन औसत स्तर का है तथा उनमें वैयक्तिक विभिन्नता अधिक है।

तालिका–3

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के भावात्मक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्र	A	04	05	0.2	0.4	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	12	12	00		
	C	06	05	0.2		
	D	03	03	00		
	E	00	00	00		
गैर आवासीय छात्र	A	06	05	0.2		
	B	12	12	00		
	C	04	05	0.2		
	D	03	03	00		
	E	00	00	00		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 0.4 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मानों– क्रमश: 9.49 तथा 13.28 से कम है। अत: यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के भावात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकलपना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का भावात्मक समायोजन समान है।

तालिका-4

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सामाजिक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्र	A	01	1.5	0.167	7.028	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	11	07	2.280		
	C	08	10	0.400		
	D	05	06	0.167		
	E	00	0.5	0.500		
गैर आवासीय छात्र	A	02	1.5	0.167		
	B	03	07	2.280		
	C	12	10	0.400		
	D	07	06	0.167		
	E	01	0.5	0.500		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 7.028 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमश: 9.49 तथा 13.28 से कम है। अत: यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का सामाजिक समायोजन समान है।

तालिका-5

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के शैक्षिक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्र	A	04	04	0.000	1.668	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	04	4.5	0.056		
	C	07	8.5	0.265		
	D	08	6.5	0.346		
	E	02	1.5	0.167		
गैर आवासीय छात्र	A	04	04	0.000		
	B	05	4.5	0.056		
	C	10	8.5	0.265		
	D	05	6.5	0.346		
	E	01	1.5	0.167		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 1.668 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमशः 9.49 तथा 13.28 से कम है। अतः यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के शैक्षिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का शैक्षिक समायोजन समान है।

तालिका-6

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सम्पूर्ण समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्र	A	02	1.5	0.167	1.368	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	05	06	0.167		
	C	14	14.5	0.017		
	D	05	03	0.333		
	E	00	00	0.000		
गैर आवासीय छात्र	A	01	1.5	0.167		
	B	07	06	0.167		
	C	15	14.5	0.017		
	D	02	03	0.333		
	E	00	00	0.000		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 1.368 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमश: 9.49 तथा 13.28 से कम है। अत: यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों के सम्पूर्ण समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का सम्पूर्ण समायोजन समान है।

तालिका-7

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के भावात्मक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्रायें	A	09	7.5	0.300	2.972	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	13	13.5	0.018		
	C	01	1.5	0.167		
	D	01	2.0	0.500		
	E	01	0.5	0.500		
गैर आवासीय छात्रायें	A	06	7.5	0.300		
	B	14	13.5	0.018		
	C	02	1.5	0.167		
	D	03	2.0	0.500		
	E	00	0.5	0.500		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 2.972 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमशः 9.49 तथा 13.28 से कम है। अतः यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के भावात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का भावात्मक समायोजन समान है।

तालिका-8

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सामाजिक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्रायें	A	00	0.5	0.500	3.716	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	11	10.5	0.024		
	C	08	6.0	0.667		
	D	05	6.0	0.167		
	E	01	2.0	0.500		
गैर आवासीय छात्रायें	A	01	0.5	0.500		
	B	10	10.5	0.024		
	C	04	6.0	0.667		
	D	07	6.0	0.167		
	E	03	2.0	0.500		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 3.716 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमश: 9.49 तथा 13.28 से कम है। अत: यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का सामाजिक समायोजन समान है।

तालिका-9

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के शैक्षिक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्रायें	A	04	3.5	0.072	3.298	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	08	8.0	0.000		
	C	07	7.5	0.034		
	D	02	3.5	0.643		
	E	04	2.5	0.900		
गैर आवासीय छात्रायें	A	03	3.5	0.072		
	B	08	8.0	0.000		
	C	08	7.5	0.034		
	D	05	3.5	0.643		
	E	01	2.5	0.900		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 3.298 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमशः 9.49 तथा 13.28 से कम है। अतः यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के शैक्षिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का शैक्षिक समायोजन समान है।

तालिका–10

आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सम्पूर्ण समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय छात्रायें	A	01	0.5	0.5	3.248	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	11	12.5	0.18		
	C	11	9.0	0.44		
	D	01	2.0	0.50		
	E	01	1.0	0.00		
गैर आवासीय छात्रायें	A	11	0.5	0.50		
	B	14	12.5	0.18		
	C	07	9.0	0.44		
	D	03	2.0	0.50		
	E	01	1.0	0.00		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 3.248 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमश: 9.49 तथा 13.28 से कम है। अत: यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं के सम्पूर्ण समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का सम्पूर्ण समायोजन समान है।

तालिका–11

आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) के भावात्मक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय विद्यार्थी	A	13	12.5	0.020	1.535	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	25	25.5	0.009		
	C	07	06.5	0.038		
	D	04	05.0	0.200		
	E	01	00.05	0.500		
गैर आवासीय विद्यार्थी	A	12	12.5	0.020		
	B	26	25.5	0.009		
	C	06	06.5	0.038		
	D	06	05.0	0.200		
	E	06	00.00	0.500		
		N=50	N=50			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 1.535 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमशः 9.49 तथा 13.28 से कम है। अतः यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के भावात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों का भावात्मक समायोजन समान है।

तालिका–12

आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) के सामाजिक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय विद्यार्थी	A	01	2.0	0.500	5.78	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	22	17.5	1.157		
	C	16	16.0	0.000		
	D	10	12.0	0.333		
	E	01	2.5	0.900		
गैर आवासीय विद्यार्थी	A	03	2.0	0.500		
	B	13	17.5	1.157		
	C	16	16.0	0.000		
	D	14	12.0	0.333		
	E	04	2.5	0.900		
		N=100	N=100			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 5.78 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमशः 9.49 तथा 13.28 से कम है। अतः यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों का सामाजिक समायोजन समान है।

तालिका–13

आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय विद्यार्थी	A	08	7.5	0.033	2.606	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	12	12.5	0.020		
	C	14	16.0	0.250		
	D	10	10.0	0.000		
	E	06	4.0	1.000		
गैर आवासीय विद्यार्थी	A	07	7.5	0.033		
	B	13	12.5	0.020		
	C	18	16.0	0.250		
	D	10	10.0	0.000		
	E	02	4.0	1.000		
		N=100	N=100			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 5.78 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमशः 9.49 तथा 13.28 से कम है। अतः यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के शैक्षिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों का शैक्षिक समायोजन समान है।

तालिका–14

आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के सम्पूर्ण समायोजन स्तर की तुलना

प्रतिदर्श	श्रेणी	अवलोकित आवृत्ति (f_0)	प्रत्याशित आवृत्ति (fe)	$(f_0-f_e)^2$ fe	काई वर्ग (c^2) का मान	सार्थकता स्तर
आवासीय	A	03	02.0	0.500	1.868	.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है।
	B	16	18.5	0.338		
	C	25	23.5	0.096		
	D	05	05.0	0.000		
	E	01	01.0	0.000		
गैर आवासीय विद्यार्थी	A	01	02.0	0.500		
	B	21	18.5	0.338		
	C	22	23.5	0.096		
	D	05	05.0	0.000		
	E	01	01.0	0.000		
		N=100	N=100			

आँकड़ों से परिगणित काई वर्ग का मान 1.868 है जो 4 d.f. में 0.05 तथा 0.01 स्तरों पर सार्थक मान– क्रमश: 9.49 तथा 13.28 से कम है। अत: यह परिकल्पना ''आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के सम्पूर्ण समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' दोनों स्तरों पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। निष्कर्ष निकलता है कि आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों का समायोजन समान है।

निष्कर्ष एवं शैक्षिक महत्व

इस अध्याय में सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष, अध्ययन के शैक्षिक महत्व एवं भावी अध्ययन हेतु सुझाव का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है–

निष्कर्ष

परीक्षण द्वारा एकत्रित आँकड़ों के वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण एवं सामान्यीकरण के आधार पर अध्ययन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं:

1. आवासीय छात्र-छात्राओं का मध्यमान क्रमश: 16 तथा 15.2 है तथा इनका मानक विचलन क्रमश: 6.33 तथा 7.03 है जो यह प्रदर्शित करता है कि आवासीय छात्र-छात्राओं का समायोजन औसत स्तर का है तथा वैयक्तिक विभिन्नता अधिक है।
2. गैर आवासीय छात्र-छात्राओं का मध्यमान क्रमश: 15.4 तथा 15.2 है तथा इनका मानक विचलन क्रमश: 5.78 तथा 8.47 है जिससे ज्ञात होता है कि गैर आवासीय छात्र-छात्राओं का समायोजन औसत स्तर है तथा वैयक्तिक विभिन्नता अधिक है।
3. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का भावात्मक समायोजन समान है। इसका कारण विद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त तथा प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा अध्यापन किया जाना है जो बच्चों के मनोविज्ञान को समझते हुये उनको पढ़ाते हैं। इससे छात्रों का अपने संवेगों पर नियंत्रण बढ़ता है।
4. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का सामाजिक समायोजन समान है, जो यह प्रदर्शित करता है कि आवासीय विद्यालय में छात्रों को अच्छा सामाजिक वातावरण प्रदान किया जाता है तथा उच्च स्तर के गैर आवासीय विद्यालयों के छात्र भी अच्छे समाज से आते हैं। इसके साथ उनको विद्यालय में भी अच्छा सामाजिक वातावरण दिया जाता है।
5. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का शैक्षिक समायोजन समान है। इसका कारण दोनों प्रकार के विद्यालयों में प्रशिक्षित तथा उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षकों द्वारा अध्यापन किया जाना है।

6. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्रों का सम्पूर्ण समायोजन समान है। जो यह प्रदर्शित करता है दोनों प्रकार के विद्यालय में छात्रों के व्यक्तित्व विकास पर ध्यान दिया जाता है।
7. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का भावात्मक समायोजन समान है। इसका अर्थ है लिंग भेद भुलाते हुये छात्राओं को भी व्यक्तित्व का विकास करने हेतु विद्यालय में पर्याप्त अवसर दिये जाते हैं।
8. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का सामाजिक समायोजन समान है। जो यह प्रदर्शित करता है कि छात्राओं को विद्यालय तथा समाज में अच्छा सामाजिक वातावरण प्रदान किया जाता है।
9. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का शैक्षिक समायोजन समान है। इसका अर्थ है दोनों प्रकार के विद्यालयों में शिक्षक छात्राओं के अध्ययन में उत्पन्न समस्याओं को दूर करके उन्हें प्रोत्साहित करते हैं।
10. आवासीय तथा गैर आवासीय छात्राओं का सम्पूर्ण समायोजन समान है जो यह प्रदर्शित करता है कि छात्राओं के पूर्ण विकास पर दोनो प्रकार के विद्यालयों में ध्यान दिया जाता है।
11. आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों का भावात्मक समायोजन समान है।
12. आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों का सामाजिक समायोजन समान है।
13. आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों का शैक्षिक समायोजन समान है।
14. आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों (छात्र-छात्राओं) का सम्पूर्ण समायोजन समान है।

    अत: प्रस्तुत अध्ययन में समायोजन के भावात्मक, सामाजिक, शैक्षिक क्षेत्र में छात्र-छात्राओं का समायोजन स्तर समान प्राप्त हुआ।

शैक्षिक महत्व

विद्यालय समाज का लघु रूप होता है। यही पर समाज को उन्नति के पथ पर ले जाने वाली भावी पीढ़ी का निर्माण होता है। विद्यालय आवासीय हो अथवा गैर आवासीय, वहाँ का वातावरण अच्छा होना चाहिये। शिक्षक उच्च शिक्षा प्राप्त, बाल मनोविज्ञान के ज्ञाता

तथा सांवेगिक रूप से मजबूत होने चाहिये। विद्यालयों को समाज की गतिविधियों में भाग लेना चाहिये। प्रस्तुत अध्ययन का शैक्षिक महत्व निम्नलिखित है।

1. प्रस्तुत शोध कार्य आवासीय तथा गैर आवासीय विद्यार्थियों के भावात्मक, सामाजिक तथा शैक्षिक समायोजन का अध्ययन करके उनमें सुधार हेतु सुझाव देने में सहायक होगा।
2. प्रस्तुत शोध कार्य का निष्कर्ष छात्रों के समायोजन में आने वाली बाधाओं को दूर करने में सहायक होगा।

प्रस्तुत अध्ययन में यह ज्ञात हुआ कि कई माध्यमिक स्तर के छात्र ऐसे थे जिनका समायोजन असंतोषजनक था। अत: ऐसे छात्रों पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि वे छात्र राष्ट्र के भविष्य है। छात्रों की दशा में सुधार हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव अग्रलिखित है।

- छात्रों के साथ घर व विद्यालय में उचित व्यवहार किया जाये। छात्रों की समस्याओं को भली प्रकार सुनकर एवं समझकर उनका निराकरण करना चाहिये।
- विद्यालय में संगोष्ठी तथा वाद-विवाद का आयोजन किया जाना चाहिये, जिससे छात्राओं को चिंतन करने तथा अपने विचारों को प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो।
- माध्यमिक स्तर के छात्र अपने चुनाव के प्रति अधिक सशंकित रहते हैं। वे आशा-निराशा के बीच झूलते रहते हैं। अत: घर में माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्य व कॉलेज में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। कॅरियर हेतु विषय के चुनाव के संशय को दूर करने के लिये कॅरियर काउन्सलर की सहायता ली जानी चाहिये।
- किशोरावस्था में छात्र अधिक संवेदनशील होते हैं। अत: घर में माता-पिता, समाज में पड़ोसियों व कॉलेज में अध्यापकों द्वारा उन्हें उचित स्थान व सम्मान दिया जाना चाहिये।

संदर्भ

कपिल, एच.के. (2012) : सांख्यिकीय के मूल तत्व, आगरा, 4/230 कचहरी घाट, एच.पी. भार्गव बुक हाउस।

गुप्ता, एस.पी. (2012) : उच्च शिक्षा मनोविज्ञान इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।

गैरिट, हेनरी ई. (1989) : शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी, लुधियाना, कल्याणी पब्लिशर्स।

चौहान, एस.एस. (2010) : एडवान्स्ड एजुकेशनल साइकोलॉजी, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।

पाठक, पी.डी. (2013) : शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।

पाण्डेय, के.पी. (2010) : शैक्षिक अनुसंधान, वाराणसी चौक, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

बुच, एम.बी. (1972–78) : 2nd सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी।

राय, पारसनाथ (2009) : अनुसंधान परिचय, आगरा, अस्पताल रोड, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।

शर्मा, आर.ए. (2012) : शिक्षा अनुसंधान, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

अनुसंधान के गुणात्मक उन्नयन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिका

आशा शर्मा* और **सुशील कुमार अवस्थी****

अनुसंधान वर्तमान ज्ञान के परिमार्जन एवं नवीन ज्ञान के सृजन की प्रक्रिया है। अनुसंधान का उद्देश्य आलोचनात्मक ढंग से किसी समस्या का विश्लेषण करना तथा उसका सामाधान खोजना होता है। अनुसंधान न केवल प्रश्नों व समस्याओं का हल प्रस्तुत करता है बल्कि घटनाओं, तथ्यों एवं विद्यमान स्थितियों को अधिक स्पष्ट बनाने व अदृश्य और अज्ञात कारकों को सामने लाने का कार्य करता है। अनुसंधान की प्रक्रिया एक तार्किक प्रक्रिया है। अनुसंधान में वैज्ञानिक विधि का अनुसरण करके प्रश्नों का उत्तर प्राप्त किया जाता है। विज्ञान के अनुसार जो सिद्ध किया जा सकता है, जो अनुभवजन्य है, जो तर्कसंगत है वही सत्य है। वैज्ञानिक विधि की पांच प्रमुख विशेषताएं होती हैं:

1. वस्तुनिष्ठता (Objectivity); 2. निश्चयात्मकता (Definiteness); 3. सत्यापन योग्यता (Verifiability); 4. सार्वभौमिकता (Universality); 5. पूर्वकथन क्षमता (Predictability)।

अनुसंधान प्रक्रिया में विज्ञान की इन सभी विशेषताओं को अपनाया जाता है। यही कारण है कि अनुसंधान में प्रश्नों का उत्तर अनुमान पर आधारित न होकर अनुभव (Experience), परीक्षण (Testing) तथा तार्किक विश्लेषण (Reasoning) पर आधारित होता है। **जॉन डब्लू वेस्ट** ने अनुसंधान के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- ''अनुसंधान को नियन्त्रित अवलोकनों के ऐसे व्यवस्थित व वस्तुनिष्ठ विश्लेषण एवं प्रलेखन के रूप में परिभाशित किया जा सकता है जो सामान्यीकरणों, नियमों अथवा

*सह-प्रोफेसर, लोक शिक्षा एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (जिला-सतना) म.प्र. 485334
**शिक्षाशास्त्र (जे.आर.एफ.), महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (जिला-सतना) म.प्र. 485334

सिद्धान्तों के विकास में सहायक हो।'' उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हमारे देश में पर्याप्त विस्तार हुआ है, उच्च शिक्षा की प्रगति पर यदि दृष्टि डालें, तो पता चलता है कि यह वृद्धि संख्यात्मक रूप से उल्लेखनीय है, किन्तु गुणात्मक रूप से इसमें ह्रास हुआ है। यही स्थिति अनुसंधान के क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। संख्यात्मक रूप में तो अनुसंधान के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति हो रही है किन्तु गुणात्मकता की दृष्टि से स्थिति चिन्ताजनक बनी हुई है। भारत में अनुसंधान की गुणवत्ता निर्धारण हेतु विशेष प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु अनुसंधान कार्यों में गुणात्मकता की कमी है। शोधकार्यों में गुणात्मक उन्नयन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कई दिशा-निर्देश तय किये हैं। यदि उन दिशा-निर्देशों का विश्वविद्यालयों द्वारा सही रूप में क्रियान्वयन किया जाए तो शोधकार्यों की गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सकती है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की पृष्ठभूमि एवं संगठन

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना का श्रेय राधाकृष्णन आयोग (1948.49) को दिया जाता है, क्योंकि विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की अनुशंसा के अनुरूप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग 28 दिसम्बर 1953 को अस्तित्व में आया तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा में समन्वय करने तथा मानकों के निर्धारण तथा अनुरक्षण हेतु 1956 में संसद के अधिनियम के माध्यम से भारत सरकार का एक सांविधिक निकाय बन गया। यू.जी.सी. अपना वित्तीय प्रबन्ध मानव संसाधन विकास मंत्रालय को उपलब्ध बजट से करता है। यू.जी.सी. में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष, दस सदस्य होते हैं। आयोग के सदस्यों में से चार सदस्य विभिन्न विश्वविद्यालय में कार्यरत शिक्षक, दो सदस्य केन्द्र सरकार में कार्यरत अधिकारी तथा चार अन्य सदस्य कृषि, वाणिज्य, उद्योग, इंजीनियरिंग, कानून, आयुर्विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों में विशिष्ट अनुभवी व्यक्ति रखे जाते हैं। सभी नियुक्तियाँ केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है। वर्तमान में यू.जी.सी. के अध्यक्ष प्रो. वेद प्रकाश हैं।

यू.जी.सी. केन्द्र, राज्य सरकारों तथा उच्चतर शिक्षण संस्थानों के बीच एक प्रमुख कड़ी का काम करता है। विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को अनुदान प्रदान करने की भूमिका के साथ-साथ यू.जी.सी. उच्च शिक्षा में सुधार करने के लिए आवश्यक उपायों पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों को भी परामर्श देता है। यू.जी.सी. विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्यापकों एवं अन्य एकादमिक स्टाफ की नियुक्ति हेतु न्यूनतम योग्यता एवं उच्च शिक्षा के मानकों जैसे विनिमय भी तैयार करता है। उच्चतर शिक्षा के बहु-आयामी उद्देश्यों की प्राप्ति तथा उच्चतर शिक्षा के मानकों को बनाये रखने एवं

उसके समन्वय के मुख्य कार्यों के निर्वहन में यू.जी.सी. ने उच्चतर शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विविध कार्यक्रम तैयार कर कार्यान्वित किये है।

क्षेत्रीय कार्यालय

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने पूरे देश में अपने कार्यों को क्रियान्वित करने हेतु कार्यों को विकेन्द्रित करते हुए हैदराबाद, पुणे, भोपाल, कोलकाता, गुवाहाटी, बंगलुरू तथा दिल्ली में सात क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये हैं। उत्तरी क्षेत्रीय कार्यालय यू.जी.सी. के 35 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली स्थिति क्षेत्रीय कार्यालय से प्रचालनरत है। क्षेत्रीय कार्यालय तथा इसके तहत शामिल राज्यों की सूची निम्नवत दृष्टव्य है:

क्र.सं.	क्षेत्रीय कार्यालय	राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र
1	दक्षिण पूर्व क्षेत्रीय कार्यालय (एस.ई.आर.ओ.), हैदराबाद	आन्ध्र-प्रदेश, तमिलनाडु, अंडमान और निकोबार, पुदुचेरी
2	पश्चिमी क्षेत्रीय कार्यालय (डब्ल्यू.आर.ओ.), पुणे	महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा, दादर और नागर हवेली, दमन और द्वीप
3	केन्द्रीय क्षेत्रीय कार्यालय (सी.आर.ओ.), भोपाल	मध्य-प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़
4	उत्तर पूर्व क्षेत्रीय कार्यालय (एन.इ.आर.ओ.), गुवाहाटी	असम, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड
5	पूर्व क्षेत्रीय कार्यालय (ई.आर.ओ), कोलकाता	पश्चिम बंगाल, बिहार, ओडीसाा, सिक्किम, झारखण्ड
6	दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्रीय कार्यालय (एस.डब्ल्यू.आर.ओ.), बंगलूरु	कर्नाटक, केरल, लक्षद्वीप
7	उत्तरी क्षेत्रीय महाविद्यालय ब्यूरो कार्यालय (ए.आर.सी.ओ.), दिल्ली	जम्मू और कश्मीर, पंजाब, चण्डीगढ़, हरियाणा, उत्तर-प्रदेश, उत्तराखण्ड

उच्च शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निम्नलिखित प्रमुख दायित्वों का निर्वहनकिया जा रहा है:

- उच्च शिक्षा के संबंध में सरकार को परामर्श देना।
- विश्वविद्यालयों तथा संबंधित महाविद्यालयों में उच्च शिक्षा के मानदण्डों को बनाये रखना।

- विश्वविद्यालयों तथा संबंधित महाविद्यालयों को विकास के लिए अनुदान देना।
- विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों से वांछित सूचनाएं एकत्रित करना।
- नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा पुराने विश्वविद्यालयों के विस्तार के संबंध में अपना मत सरकार को देना।
- विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों का निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण करना।
- परीक्षा सुधार, पाठ्यचर्या निर्माण एवं शोध-कार्य के विषय में महत्वपूर्ण कार्य करना।
- शिक्षकों के लिए ओरिएण्टेशन तथा रिफ्रेसर कोर्सों का संचालन करना।
- पुरस्कार, छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षक पात्रता परीक्षा आदि की व्यवस्था एवं संचालन करना।
- महिला-शिक्षा, विकलांग शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा एवं वांछित वर्गों के शैक्षिक कल्याण हेतु विशेष कार्य करना।

अनुसंधान कार्यों के गुणात्मक उन्नयन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिका

किसी भी देश के विकास में अनुसंधान कार्यों की भूमिका अहम् होती है, जिस देश में जितना गुणवत्तापरक अनुसंधान कार्य किया जायेगा वह देश उतना ही विकसित हो जायेगा। भारत में प्राचीन काल से ही अनुसंधान कार्यों पर विशेष ध्यान दिया गया था। विश्व के प्रथम विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त करने वाले तक्षशिला विश्वविद्यालय एवं नालन्दा विश्वविद्यालय जैसे विश्वविद्यालयों में उच्च कोटि का शोधकार्य किया जाता था। लेकिन वर्तमान परिदृष्य पर दृष्टिपात किया जाए तो भारत में हो रहे शोध कार्यों की गुणवत्ता आज भी एक प्रश्न चिन्ह के रूप में दस्तक दे रही है। विश्व रैंकिंग में भारत के किसी भी विश्वविद्यालय को प्रथम 100 में शामिल नहीं किया जाता है। इसका प्रमुख कारण भारतीय शिक्षा संस्थानों में किया जा रहा अनुसंधान कार्य गुणवत्ता की दृष्टि से वैश्विक स्तर पर अपनी प्रतिष्ठा स्थापित नहीं कर पा रहा है।

स्वतंत्रता के समय हमारे देश में 20 विश्वविद्यालय तथा 500 महाविद्यालय थे एवं उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्रों की संख्या 2.1 लाख थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन सभी की संख्याओं में काफी वृद्धि हुई है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक (31.03.2012) देश में 573 विश्वविद्यालय एवं 35,539 महाविद्यालय थे। वर्ष 2013-14 के

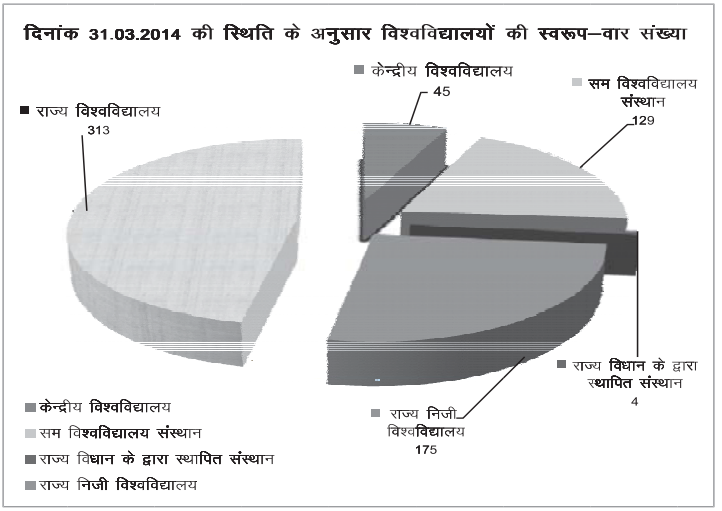

स्रोत: यू.जी.सी. (2013–14). 60वीं वार्षिक रिपोर्ट, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली. www.ugc.ac.in.

दौरान 666 विश्वविद्यालय (45 केन्द्रीय, 129 सम विश्वविद्यालय, 313 राज्य विश्वविद्यालय एवं 175 राज्य निजी तथा 4 संस्थान विशेष राज्य विधान अधिनियमों के अंर्तगत स्थापित किये गये थे) एवं महाविद्यालयों की संख्या 39,671 थी। इस प्रकार ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत में प्राप्त आंकड़ों की तुलना में बारहवीं पंचवर्षीय योजना के द्वितीय वर्ष में विश्वविद्यालयों की संख्या में 16 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा महाविद्यालयों की संख्या में 11.63 प्रतिशत की वृद्धि हुई। शिक्षा वर्ष 2013–14 के दौरान समस्त विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों तथा अन्य उच्चतर शिक्षण संस्थानों में 237.65 लाख छात्रों का नामांकन हुआ।

शिक्षा वर्ष 2013–14 के दौरान नामांकन की स्थिति से यह ज्ञात होता है कि उच्चतर शिक्षा प्रणाली में स्नातकपूर्व स्तर पर विविध प्रकार के पाठ्यक्रमों में अधिक नामांकन रहा है। विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को मिलाकर स्नातक स्तर पर 85.12 प्रतिशत विद्यार्थी नामांकित थे। परास्नातक स्तर के पाठ्यक्रमों में नामांकन 12.35 प्रतिशत रहा जबकि शोध हेतु नामांकन करने वाले छात्रों की प्रतिशतता बहुत ही चिन्ताजनक रही, मात्र 0.85 प्रतिशत विद्यार्थी ही अनुसंधान कार्य में संलग्न थे। आंकड़ों से स्पष्ट है कि हमारे देश में उच्च शिक्षा की स्थिति उत्कृष्ट नहीं है। मात्रात्मक दृष्टि से भी मात्र 0.85 प्रतिशत विद्यार्थी ही अनुसंधान कार्य कर रहे हैं एवं उनके द्वारा किया जा रहा अनुसंधान कार्य भी गुणवत्ता तथा उत्कृष्टता की दृष्टि से वैश्विक स्तर पर अपनी

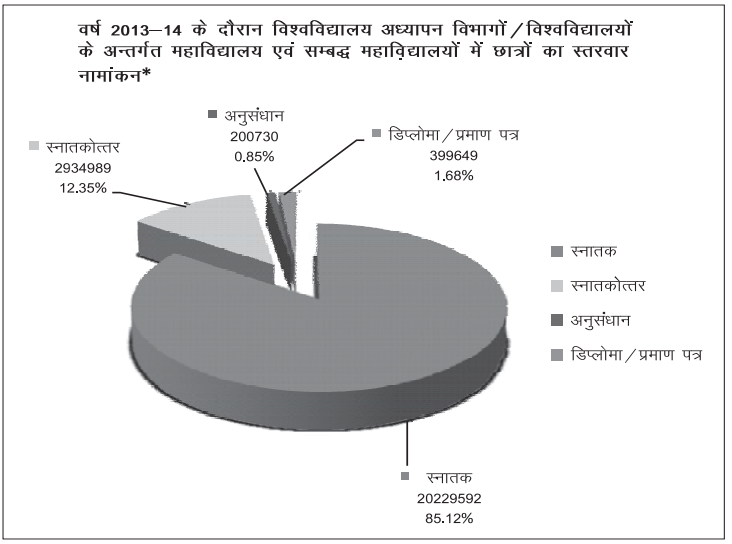

स्रोत: यू.जी.सी.(2013-14). 60वीं वार्षिक रिपोर्ट, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली. www.ugc.ac.in.

पहचान नहीं बना पा रहा है। अनुसंधान कार्यों की गुणवत्ता तथा उत्कृष्टता संवर्धन हेतु यू.जी.सी. द्वारा विशेष प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु योजनाबद्ध ढंग से क्रियान्वयन के अभाव में इसके सफल परिणाम अभी भी सम्भव नहीं हो पायें हैं। अनुसंधान की गुणवत्ता तथा उत्कृष्टता संवर्धन एवं प्रोत्साहन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निम्नलिखित प्रमुख कार्य किये जा रहें हैं:

I. **अध्यापकों के लिए शोध परियोजनाएं - वृहद एवं लघु:** यू.जी.सी. इन परियोजनाओं के तहत विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय में कार्यरत स्थायी, कार्यरत सेवानिवृत्त शिक्षकों को उनके पसंद के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य आरंभ करने के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाता है। अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी, आयुर्विज्ञान, कृषि सहित विज्ञान के लिए अनुदान की अधिकतम सीमा 20 लाख रुपये एवं मानविकी, सामाजिक विज्ञान, भाषा, साहित्य, कला, विधि तथा सम्बद्ध विधाओं के लिए 15 लाख रुपये है। परियोजनाओं की अवधि तीन वर्ष अधिकतम है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान लाभार्थियों की कुल संख्या 9,313 थी। अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी, आयुर्विज्ञान, कृषि सहित विज्ञान में लाभार्थियों की कुल संख्या 5,573 थी एवं मानविकी, सामाजिक विज्ञान, भाषा, साहित्य, कला, विधि तथा संबद्ध विधाओं में कुल 3,740 परियोजनाओं को लाभ मिला था। इन

अनुसंधान परियोजनाओं का प्रमुख उद्देष्य विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय के अध्यापकों को विशेषज्ञता के क्षेत्र में व्यक्तिगत शोध को सहायता प्रदान कर उच्चतर शिक्षा में अनुसंधान की गुणवत्ता तथा उत्कृष्टता को बढ़ावा देना है।

II. **शोध अवार्ड:** अनुसंधान की उत्कृष्टता संवर्धन हेतु यू.जी.सी. शोध पुरस्कार की योजना का क्रियान्वयन करती थी जिसके तहत आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थानों में स्थायी शिक्षकों को उनके विशेषज्ञता के क्षेत्र में किसी शोध मार्गदर्शन के लिए और शिक्षण उत्तरदायित्व के बिना दो वर्ष की अवधि तक अनुसंधान कार्य हेतु अवसर प्रदान करती है। जिन अध्यापकों के पास डॉक्टोरेट की उपाधि है तथा जिन्होंने अपने शोध कार्य में उत्कृष्टता का प्रदर्शन किया है तथा जो 45 वर्ष से कम आयु के हैं उन्हें अवार्ड देने हेतु पात्र माना जाता है। इन पुरस्कार की अवधि दो वर्ष है जो विस्तारित नहीं की जाती है। यू.जी.सी. द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति द्वारा की गई अनुशंसाओं के आधार पर विज्ञान, मानविकी एवं समाज तथा प्रौद्योगिकी एवं इंजीनियरिंग में प्रत्येक वर्ष 100 स्लॉट के लिए चयन किया जाता है। इस योजना के तहत यू.जी.सी. द्वारा वर्ष 2012–13 में 7.35 करोड़ एवं वर्ष 2013–14 में 7.20 करोड़ रुपये अनुसंधान कार्यों के प्रोत्साहन हेतु व्यय किया गया।

III. **एमेरिटस अध्येतावृत्तियाँ:** एमेरिटस अध्येतावृत्ति योजना का मुख्य उद्देश्य सभी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के 70 वर्ष तक की आयु के सेवानिवृत्त शिक्षकों के लिए उनके द्वारा उनकी विशेषज्ञता के क्षेत्र में शोध कार्य करने के अवसर प्रदान करना है। इस अध्येतावृत्ति के लिए पात्रता को इस बात पर आँका जाता है कि सम्बद्ध शिक्षक द्वारा उसके सेवाकाल के दौरान किए गए शोध या प्रकाशित कार्य की गुणवत्ता कितनी है। किसी भी एक समय के दौरान विज्ञान के लिए उपलब्ध स्लॉटों की संख्या प्रत्येक दूसरे वर्ष 100 तथा मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान के लिए प्रत्येक दूसरे वर्ष 100 है। अध्येता के लिए 50,000/–रु. प्रतिवर्ष की आकस्मिक धनराशि के साथ दो वर्षों के लिए 20,000/–रु. प्रतिमाह का मानेदय प्रदान किया जाता है। वर्ष 2013–14 के दौरान अध्येताओं को भुगतान करने पर 11.22 करोड़ रुपये व्यय किया गया। एमेरिटस अध्येताओं के लिए आवेदन ऑनलाईन पद्धति से आमंत्रित किये जाते हैं एवं आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों के आधार पर अध्येतावृत्ति प्रदान की जाती है। चयन हेतु अ.जा./अ.ज.जा./अ.पि.व. /शारीरिक रूप से नि:शक्त तथा अल्पसंख्यक व्यक्तियों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

IV. **विदेशी नागरिकों के लिए कनिष्ठ अनुसंधान अध्येतावृत्ति (जे.आर.एफ.) एवं अनुसंधान एसोशिएटशिप (आर.ए.):** शोध कार्यों को बढ़ावा देने हेतु यू.जी.सी. विदेशी नागरिकों को भारतीय विश्वविद्यालयों में एम.फिल./पी-एच.डी. करने हेतु प्रत्येक वर्ष 20 अभ्यर्थियों को जे.आर.एफ. प्रदान करती है। अध्येतावृत्ति चार वर्ष के लिए प्रदान की जाती है। यू.जी.सी. द्वारा विदेशी नागरिकों के लिए अनुसंधान एसोसिएटशिप भी दी जाती है। इसके तहत यू.जी.सी. द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति के प्रस्तावों के मूल्यांकन के आधार पर भारतीय विश्वविद्यालयों में विज्ञान, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की किसी भी विधा में पोस्ट-डॉक्टोरल शोध करने के इच्छुक अभ्यर्थियों से प्राप्त आवेदनों में से आर.ए. हेतु सात अभ्यर्थियों का चयन किया जाता है। यह अध्येतावृत्ति चार वर्ष के लिए प्रदान की जाती है।

V. **भारतीय नागरिकों के लिए विज्ञान, मानविकी एवं समाज विज्ञान में कनिष्ठ अनुसंधान अध्येतावृत्तियाँ (जे.आर.एफ.):** इसे योजना का मुख्य उद्देश्य विद्वान शोधार्थियों को उच्च शोध एवं अध्ययन करने के अवसर उपलब्ध कराना है ताकि वे भाषाओं तथा विज्ञान सहित मानविकी एवं समाज विज्ञान में एम.फिल./पी-एच.डी. की उपाधियां प्राप्त कर सकें। यू.जी.सी. एवं सी.एस.आई.आर. की राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा नेट/जेआरएफ को उत्तीर्ण करने वाले अभ्यर्थियों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जे.आर.एफ. प्रदान की जाती है। इस अध्येतावृत्ति की कुल अवधि 5 वर्ष है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के तहत यू.जी.सी. द्वारा सन् 2007-08 में 34 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया एवं 37.50 करोड़ रुपये राशि जारी की गयी तथा 5,000 शोधार्थियों को इस योजना का लाभ मिला। सन् 2011-12 में 34.37 करोड़ की राशि का आवंटन किया गया तथा 188 करोड़ की राशि जारी की गयी एवं लाभार्थियों की संख्या बढ़कर 18,000 हो गयी। इसी प्रकार बारहवीं पंचवर्षीय योजना के तहत वर्ष 2012-13 में यू.जी.सी. द्वारा 127 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया तथा 257 करोड़ रुपये की राशि जारी की गयी एवं 22,000 शोधार्थियों को जे.आर.एफ. का लाभ मिला। वर्ष 2013-14 के दौरान विज्ञान, मानविकी एवं समाज विज्ञान विषयों में जे.आर.एफ. पर 171 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई। वर्तमान में जे.आर.एफ. योजना के तहत लगभग 32000 शोधार्थी एम.फिल./पी-एच.डी. कर रहे हैं। यू.जी.सी. द्वारा जे.आर.एफ. के लिए प्रतिवर्ष 8800 स्लॉट हैं।

VI. **अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय अध्येतावृत्तियाँ:** उच्च शिक्षा में सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए यू.जी.सी. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अभ्यर्थियों (अ0जा0

के लिए 2000 तथा अ.ज.जा. के लिए 667) के लिए 2667 राजीव गाँधी राष्ट्रीय अध्येतावृत्तियाँ उपलब्ध कराता है ताकि वे उच्चतर अध्ययन एवं शोध कर एम. फिल/ पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त कर सकें। इस अध्येतावृत्ति की अवधि पाँच वर्ष है। वर्ष 2013-14 के दौरान योजनागत स्कीम के तहत अ.जा. के अध्येताओं के लिए 65.29 करोड़ रुपये तथा अ.ज.जा. के अध्येताओं के लिए 27.19 करोड़ रुपये व्यय किया गया।

VII. **अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए पोस्ट डॉक्टोरल अध्येतावृत्तियाँ:** इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए उनके द्वारा चुने हुए क्षेत्रों में उच्च शोध करने हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करना है। इस योजना का लाभ प्राप्त करने हेतु अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थियों को डॉक्टोरल उपाधि के साथ शोध पत्र प्रकाशित होना चाहिए। इस पोस्ट डॉक्टोरल अध्येतावृत्ति की अवधि 5 वर्ष है एवं यू.जी.सी. द्वारा इसके लिए प्रत्येक वर्ष 100 स्लॉट है। वर्ष 2013-14 के दौरान कुल 67 अ.जा. एवं 33 अ.ज.जा. के अभ्यर्थियों का चयन किया गया एवं 6,38,57,475/- रुपये राशि का व्यय हुआ।

VIII. **शोध वैज्ञानिक योजना:** विदेशों में कार्यरत भारतीय मूल के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों को शोध में उच्च गुणवत्ता विकसित करने के लिए सन् 1983 में शोध वैज्ञानिक योजना आरम्भ की गई। वर्तमान में योजना के तहत विभिन्न संस्थाओं के 68 शोध वैज्ञानिक कार्यरत हैं। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान वर्ष 2012-13 में कुल 5.39 करोड़ एवं वर्ष 2013-14 में 4.04 करोड़ रुपये इस योजना के अन्तर्गत व्यय किया गया।

IX. **अल्पसंख्यक छात्रों के लिए मौलाना आजाद राष्ट्रीय अध्येतावृत्ति:** मौलाना आजाद राष्ट्रीय अध्येतावृत्ति का उद्देष्य अल्पसंख्यक समुदायों के विद्यार्थियों को एम.फिल. और पी-एच.डी. शोध कार्य करने हेतु अधिकतम 5 वर्ष तक वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इस अध्येतावृत्ति योजना के तहत प्रतिवर्ष 756 स्लॉट उपलब्ध हैं। यू.जी.सी. द्वारा प्रदत्त अध्येतावृत्ति की दर अन्य अध्येतावृत्तियों की दर के समकक्ष होगी। वर्ष 2013-14 के दौरान विभिन्न राज्यों से 756 अभ्यर्थियों का चयन किया गया और 46.46 करोड़ रुपये का व्यय किया गया।

X. **महिलाओं के लिए पोस्ट डॉक्टोरल अध्येतावृत्ति:** यू.जी.सी. द्वारा पी-एच.डी. उपाधि धारक बेरोजगार महिलाओं के लिए पूर्णकालिक आधार पर पोस्ट-डॉक्टोरल

शोध करने के लिए प्रति वर्ष 100 स्लॉट उपलब्ध कराये जा रहे हैं। सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के मामले में अधिकतम आयु सीमा 55 वर्ष तथा अ.जा./अ.ज.जा./अ. पि.व./शारीरिक रुप से नि:शक्त अभ्यर्थियों के मामले में यह 60 वर्ष है।

XI. **डॉ. डी.एस. कोठारी पोस्ट- डॉक्टोरल अध्येतावृत्ति:** विज्ञान विषयों में एक नवीन पोस्ट डॉक्टोरल अध्येतावृत्ति योजना महान शिक्षाविद् यू.जी.सी. के पूर्व चेयरमैन डॉ. डी.एस. कोठारी के नाम से लागू की गई है। इस योजना के अन्तर्गत ऐसे अभ्यर्थी जिन्होंने पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त कर ली है अथवा अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर दिया है, वे आवेदन करने के लिए पात्र हैं। वर्ष 2013-14 के दौरान विभिन्न संस्थाओं में कार्यरत अध्येताओं को 22.80 करोड़ रुपये जारी किये गये । अभी तक 1242 अभ्यर्थियों को अवार्ड दिया गया है तथा 550 पी.डी.एफ. कार्यरत हैं।

यू.जी.सी. द्वारा शोध में उत्कृष्टता को बढ़ावा देने के लिए और भी कई तरह की सुविधाएं विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को प्रदान की जाती हैं, जैसे- महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के विज्ञान विभागों में अवसंरचना को सुदृढ़ करने के लिए विकास अनुदान, नेटवर्किंग शोध केन्द्र : समर-विंटर स्कूल, विज्ञान विषयों में मेधावी छात्रों के लिए अनुसंधान अध्येतावृत्तियां, आपरेशन फैकल्टी रीचार्ज बीएसआर संकाय अध्येतावृत्ति योजना, बीएसआर कार्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षकों को एकमुश्त अनुदान, भर्ती हुए नये संकाय सदस्यों हेतु '**स्टार्ट अप**' अनुदान आदि।

निष्कर्ष एवं सुझाव

भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली, अमेरिका और चीन के बाद विश्व की सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली है। उच्च शिक्षा का आधार अनुसंधान है जो भविष्य के लिए ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। गुणवत्तायुक्त शोध कार्य विशेष ज्ञान एवं कौशलों के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय विकास में योगदान प्रदान करता है एवं देश का राष्ट्रीय विकास तब सुनिश्चित होता है जब शोध की प्रवृत्ति समसामयिक हो तथा उसका योगदान देश की नीति निर्धारण में हो। अनुसंधान के क्षेत्र में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किये जा रहे प्रयास सराहनीय हैं परंतु यू.जी.सी. रेग्यूलेशन, 2009 का केन्द्रीय संस्थानों के साथ राज्य स्तरीय संस्थानों में भी प्रभावी क्रियान्वयन आवश्यक है, जिससे शोध की गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सके।

वर्तमान में अनुसंधान के क्षेत्र में गुणात्मक उन्नयन हेतु उच्च शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ स्तर के शैक्षणिक संस्थानों को खोलने तथा उनके प्रबन्धन में गुणवत्तास्तर की अभिवृद्धि करने, शोधार्थियों में गुणवत्तायुक्त शोध कार्य करने के प्रति रुचि एवं सकारात्मक

अभिवृत्ति विकसित करने के साथ-साथ गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करने के लिए आज विशेष प्रयासों की आवश्यकता है जिससे अनुसंधान के विविध क्षेत्रों में गुणात्मक दृष्टि से शोधकार्य करने की ओर शोधार्थियों एवं शोध निर्देशकों को अभिप्रेरित किया जा सके। देश में चल रहे सभी केन्द्रीय व राज्य स्तरीय विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मानकों के तहत शिक्षकों के रिक्त पदों को प्राथमिकता के आधार पर भरा जाना चाहिए तभी शोधकार्यों में उत्कृष्टता के साथ-साथ गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सकती है क्योंकि देश के अधिकांश केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में लगभग 30 से 40 फीसदी पद रिक्त चल रहें हैं तथा राज्य सरकारों द्वारा संचालित विश्वविद्यालयों में भी लगभग 40 से 45 फीसदी पद रिक्त चल रहें हैं। विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की स्थिति सुधारने के लिए न केवल पर्याप्त धन व संसाधन मुहैया कराया जाय बल्कि उनके सफल संचालन हेतु प्रशासकों की जवाबदेही के साथ-साथ प्रषासन को पारदर्शी बनाया जाना चाहिए जिससे राज्य सरकारों की उपेक्षा झेल रहे विश्वविद्यालयों की तत्कालीन समस्याओं का निराकरण हो सके जिससे शैक्षणिक गुणवत्ता का संवर्धन किया जा सके।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुसंधान के गुणात्मक उन्नयन के संदर्भ में दिये गये दिशा-निर्देशों के क्रियान्वयन के प्रति शैक्षणिक संस्थानों की जवाबदेही का सुनिश्चित होना आवश्यक है। इसके साथ ही विश्वविद्यालयों द्वारा ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए कि शोधार्थी एवं शोध पर्यवेक्षक अच्छे ग्रेड प्राप्त करने के लिए शोध प्रक्रिया के दौरान कार्य की गुणवत्ता पर गंभीरतापूर्वक विचार कर सकें तथा उत्तम ग्रेड पाने पर अग्रिम शोध कार्य हेतु अभिप्रेरित एवं प्रोत्साहित हो सकें।

गुणवत्तायुक्त शोध प्रबंधों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रकाशन में प्राथमिकता हेतु एक रणनीति भी बनानी चाहिए जिसके तहत प्रत्येक विश्वविद्यालय व संस्थान के शोधकार्यों व शोध जर्नल को यू.जी.सी. द्वारा निर्मित वेबसाइट पर डाल दिया जाना चाहिए और शोधार्थियों द्वारा प्रकाशित शोधपत्रों को इस वेबसाइट पर डालना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए जिससे शोध के क्षेत्र में पारदर्शिता लायी जा सके एवं भावी शोधार्थियों को उसका लाभ मिल सके। देश के समस्त विश्वविद्यालयों में अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप पुस्तकालयों की स्थापना की जानी चाहिए जहाँ शोधार्थियों के लिए विशेष सुविधाएं होनी चाहिए। अत: अनुसंधान के गुणात्मक उन्नयन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिका तभी सार्थक सिद्ध हो सकेगी जब उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्थापित शैक्षणिक संस्थाएं इस दिशा में सार्थक पहल कर अपनी नैतिक जिम्मेदारी को गम्भीरतापूर्वक क्रियान्वित करने का प्रयास करेंगी।

सन्दर्भ

भदौरिया, मृदुला (2005). वर्तमान सन्दर्भों में भारतीय उच्च शिक्षा का दिशा निर्धारण. *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष 23, अंक 3, जनवरी 2005, एन.सी.ई.आर.टी.: नई दिल्ली. पृ. 53-56.

भट्टाचार्य, जी.सी. (2008). *अध्यापक शिक्षा,* आगरा अग्रवाल पब्लिकेशन: दिल्ली.

भारत (2015). प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.

गुप्ता, कमलेश (2010). भारत में उच्च शिक्षा में समसामयिक सुधार एवं नीतिगत क्रियान्वयन. *परिप्रेक्ष्य,* वर्ष 17, अंक 1,अप्रैल 2010ण्न्यूपा: नई दिल्ली. पृ. 29-48.

हुसैन, यूनुस मोहम्मद एवं हुसैन, इरशाद मोहम्मद (2010). विश्वविद्यालयों में हो रहे शोध कार्यों की गुणवत्ता उन्नयन हेतु प्रयास. *भारतीय आधुनिक शिक्षा***,** वर्ष 30, अंक 4, अप्रैल 2010, एन.सी.ई.आर.टी.: नई दिल्ली. पृ. 90-95.

जसवाल, राजेष कुमार(2014).देश में उच्च शिक्षा का मात्रात्मक, गुणात्मक विकास एवं निजीकरण. *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष 34, अंक 4 अप्रैल 2014, एन.सी.ई.आर.टी.: नई दिल्ली. पृ. 102-108.

कौल, लोकेश (2014). *शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली.* विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि.: नोएडा.

शाह, ए. मंजूर (2014). क्वॉलिटी रिसर्च इन इंस्टीट्यूट्स ऑफ हायर लर्निंग, *यूनिवर्सिटी न्यूज,* वॉल्यूम 52(42), अक्टूबर 20-26, 2014. ए.आई.यू.: नई दिल्ली.

शरण, शंकर (2010). भारत में शिक्षा शोध की अवस्था. *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* वर्ष 30, अंक 4, अप्रैल 2010, एन.सी.ई.आर.टी.: नई दिल्ली. पृ. 30-44.

शर्मा, संजय (2010). शिक्षा, गुणवत्ता एवं विचारधारा. *परिप्रेक्ष्य,* वर्ष 17, अंक 3, दिसम्बर 2010, न्यूपा: नई दिल्ली. पृ. 1-16.

सिंह, जे.डी. (2013). रिसर्च एक्सीलेन्स इन हायर एजुकेषन:मेजर चैलेन्जेस एण्ड पॉसिबल एनऐबलरस, *यूनिवर्सिटी न्यूज,* वॉल्यूम 51(32), अगस्त 12-18, 2013. ए.आई.यू.: नई दिल्ली.

सिंह, निर्भय (2009). उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता-मुद्दे और उत्तरदायित्व. *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* वर्ष 30, अंक 2, अक्टूबर 2009, एन.सी.ई.आर.टी.: नई दिल्ली. पृ. 99-105.

यू.जी.सी. (2013-14). 60वीं वार्षिक रिपोर्ट, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली. www.ugc.ac.in

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण

राम निवास*

भारत की शिक्षा व्यवस्था में दोहरी शिक्षा नीति काम कर रही है। एक ओर सरकारी तंत्र के अनुशासन में चलने वाले विद्यालय हैं तो वहीं दूसरी ओर प्राइवेट संस्थाएँ भी अपनी पूरी चमक-दमक के साथ अपने विद्यालयों का संचालन कर रही हैं। हालांकि प्राईवेट शिक्षा संस्थाओं में अधिकांशत: वे लोग ही शिक्षक के रूप में कार्य करते हैं जो किसी सरकारी सेवा की प्रतियोगी परीक्षा में सफल नहीं हो पाते। लेकिन अभिभावक फिर भी प्राईवेट शिक्षा संस्थाओं में ही अपने बच्चों को पढ़ाना आवश्यक समझते हैं। निजी शिक्षा संस्थाओं का प्रभाव क्षेत्र सार्वजनिक जीवन पर हावी होता जा रहा है। देश में सीधे-सीध ो दो वर्ग तैयार हो रहे हैं एक वंचित वर्ग जो प्राईवेट विद्यालयों की मँहगी फीस देने में असमर्थ है और दूसरा, निम्न मध्य एवं मध्य शहरी समाज जो वंचित वर्ग से अधिक सुविधा संपन्न है। प्रजातंत्र में शिक्षा के आधार पर समाज का विभाजन और लोगों को एक दूसरे के खिलाफ खड़े होने की अनुमति नहीं है। शिक्षा का उपयोग सामाजिक सांस्कृतिक एकता और आर्थिक समानता के लिए किया जाना चाहिए। सरकारी सेवाओं के लिए होने वाली प्रतियोगिताओं का स्वरूप ही अलग है ऐसे में सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थी अधिकांशत: पिछड़ जाते हैं। यह भी सत्य है कि सरकारी सेवाओं हेतु आयोजित की जाने वाली सारी प्रतियोगिताएं होती हैं ही भीड़ कम करने और छँटनी के लिए। परंतु शिक्षा मनुष्य समाज के चहुँमुखी विकास और उन्नति के लिए है यदि यह ऐसा नहीं कर पाती तो इसे तुरंत बदलना चाहिए। प्रत्येक शिक्षित को अपनी योग्यता के लिए पर्याप्त अवसर देना शिक्षा नीति निर्धारकों और कार्यक्रम बनाने वालों को ही सामूहिक जिम्मेदारी है। लेकिन जो नीति-निर्माता अपनी नीतियों को ही पत्थर की लकीर समझते हैं और

*सह प्रोफेसर, हिंदी क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर 305004

कोई बदलाव नहीं चाहते उन्हें अपनी शिक्षा नीतियों पर पुनः विचार करना आवश्यक है। साक्षरता बढ़ती जा रही है अधिकाधिक लोग शिक्षित हो रहे हैं उसी अनुपात में बेरोजगारों की भीड़ भी बढ़ती जाती है। गुणवत्तायुक्त शिक्षा की कमी दिखाई दे रही है। प्राईवेट शिक्षा संस्थाओं में वंचित वर्ग के छात्र-छात्राओं की कुछ सीटें आरक्षित की गई हैं। परंतु इस नियम का पालन नहीं किया जा रहा है? इस पर विचार करने की आवश्यकता है। ऊपरी तौर पर दिखाई देता है कि शिक्षा से सामाजिक-आर्थिक समानता आ रही है लेकिन आंतरिक व्यवस्था ऐसी है कि शिक्षा में व्यवस्थागत दो भेद दिखाई दे रहे हैं- (i) धनी वर्ग की शिक्षा (ii) निर्धनों की शिक्षा। धनी वर्ग अंग्रेजी माध यम के स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करता है तो निर्धन वर्ग सरकारी विद्यालयों में अपनी ज्ञान पिपाशा शांत करता है।

शिक्षा का माध्यम

'शिक्षा का माध्यम को लेकर भी वैचारिक एकता बन पाई है। परंतु शिक्षाविदों का मानना है कि प्राथमिक स्तर की शिक्षा का माध्यम बच्चे की मातृभाषा होनी चाहिए जिसमें बच्चा अपने को सहज अनुभव करे। परंतु हिंदी भाषी प्रांतों में अल्प संख्यक समुदायों की मातृभाषा में कैसे दी जाए यह प्रश्न भी लगातार खड़ा किया जाता है जो कि अपनी जगह पर बिल्कुल सही है। प्रजातंत्र में कोई भी भाषा और शिक्षा के माध्यम की भाषा की जन साधारण में सहज स्वीकृति होनी चाहिए। कोई भी भाषा किसी भी रूप में और किसी भी स्तर पर थोपी नहीं जा सकती। यह प्रजातंत्र और मनुष्य समाज की प्रकृति के विपरीत ही है। मुट्ठीभर अभिजात्य वर्ग के हित स्वार्थ को दृष्टिगत रखकर ही 'शिक्षा का माध्यम' और संपर्क भाषा लगातार जनसाधारण पर थोपी जा रही है। प्रतियोगी परीक्षाओं की माध्यम भाषा और उच्च स्तर पर 'विज्ञान शिक्षण' की भाषा इसके उदाहरण हैं। भाषा को लेकर आज शिक्षा व्यवस्था के बीच एक फासला भी दिखाई दे रहा है। यदि भाषा के प्रति शिक्षा व्यवस्था में एक राय बने जो सभी समाजों और समुदायों को स्वीकार हो तो भाषा और शिक्षा व्यवस्था के मध्य जो फासला है, जो रिक्तता है उसे भरा जा सकता है।

शिक्षा के विभिन्न स्तर और भाषा

शिक्षा का प्रत्येक स्तर बराबर महत्व का है चाहे वह स्कूल से पहले की शिक्षा ही क्यों न हो। स्कूल से पहले की शिक्षा को भाषिक संस्कार आगे की शिक्षा का आधार मजबूत

करते हैं। बच्चों को भाषा सिखाते समय हम उन्हें सारे जीवन काम आनेवाला एक औजार सौंप रहे होते हैं। भाषा हमारे विचारों की वाहक होने के साथ-साथ नए विचारों को जन्म देने वाली भी है। भाषा के माध्यम से ही अमूर्त ज्ञान विचार की प्रवाहमान अजस्र धारा मूर्त रूप ले पाती है। इसलिए भाषा को लेकर कोई विवाद अथवा लड़ाई का कोई औचित्य ही नहीं है। यदि किसी देश अथवा समाज की भाषा छीन ली जाए तो वह देश समाज सदा के लिए मानसिक रूप से गुलाम हो जाता है। यह काम तोप अथवा बंदूक नहीं कर सकती किसी भी राष्ट्र की संस्कृति की वाहक भाषा ही होती है। मनुष्य की भाषा संस्कृति उन मानवीय और सार्वभौमिक मूल्यों को आधार देती है जिनके सहारे वह दुनिया में अपनी एक अलग जगह बनाता है। देश-विदेश की सारी भाषाएँ एक समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। उन्हें किसी भी समाज अथवा भाषा का शोषण का साधन नहीं बनने देना चाहिए। एक भाषा का दूसरी भाषा पर वर्चस्व होने पर भाषा-भाषी वर्ग का दूसरे भाषा-भाषियों पर प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। जो समाज असमानताएँ उत्पन्न करता है। पर्याप्त संरक्षण नहीं मिलने के कारण कुछ भाषाएँ समाप्त हो चुकी हैं। यह चिंताजनक है। किसी भी समुदाय की भाषा का मरना सिर्फ भाषा का मरना ही नहीं है बल्कि उसके साथ-साथ पर्यारवण, संस्कृति और सोच-विचार का मरना भी है। सीधे तौर पर मस्तिष्क का चला जाना भी है।

भाषा और ज्ञान के प्रवाह में बदलाव

संसार की सभी भाषाएँ अपनी गति और स्वभाव से ही प्रवाहमान हैं इसलिए उनमें अंतर्निहीत ज्ञान भी प्रवाहमान है अर्थात् वह भी युग और परिस्थितियों के अनुरूप बदलता रहता है। भाषा शिक्षा को ऐसा बनाना होगा कि वह हमारे सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव का प्रभावी साधन बन सके। जो भी भाषा के अध्यापक हैं चाहे वे किसी भी स्तर पर किसी भी भाषा को पढ़ाते हों यदि वे शिक्षणचेता हैं तो उन्हें किसी भी विचारधारा या आइडियोलॉजी की जरुरत नहीं पड़ती क्योंकि वे स्वभावत: ही आवश्यकता के अनुसार अपने शिक्षण में परिवर्तन करते रहते हैं। ऐसे शिक्षणचेता अध्यापकों का कक्षा शिक्षण ही इसका प्रमाण है। भाषा शिक्षण में अध्यापकों के सामने ऐसे अनेक अवसर आते हैं। जब वे पाठ में 'स्थापित विचारों से आगे की सोच' को प्रोत्साहन दे सकते हैं। लिखित अभिव्यक्ति में जब बालक-बालिकाओं के मौलिक चिंतन मनन को रेखांकित किया जाता है तो जो विद्यार्थी स्थापित विचारों से आगे अपने विचार प्रस्तुत करता है उसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

मेधा उपलब्ध ज्ञान से आगे

भाषा शिक्षण में विद्यालयी स्तर पर विभिन्न एक्टीविटी (क्रियाकलाप) पर जोर दिया जाता है जिससे विद्यार्थी सर्जनशील बनें। साथ-साथ वे स्वयं करके सीखें और नए ज्ञान का निर्माण करने हेतु उत्सुक हों। नए ज्ञान का निर्माण करने की प्रक्रिया में ही विद्यार्थी की 'मेधा उपलब्ध ज्ञान से आगे' जाकर कार्य करती है। विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से आज शिक्षण के क्षेत्र में भी तार्किक ज्ञान का बोलबाला है। तर्क की कसौटी पर जो विचार खरे नहीं उतरते उसे स्वीकार नहीं किया जाता। जो ज्ञान सिद्ध करके दिखाया जा सके उसे ही स्वीकार किया जाता है। उपयोगिता भी ऐसे ही ज्ञान की है। लेकिन तार्किकता के भी कुछ मान्य सिद्धांत हैं। जिनके आधार पर ज्ञान में तर्क को स्थापित किया जाता है और वह ज्ञान ग्रहण करने योग्य बन जाता है।

तार्किकता के मान्य सिद्धांतों से आगे का विचार

तर्क विहीन ज्ञान आज शंका की दृष्टि से देखा जाता है। भ्रम का निवारण सिर्फ वैज्ञानिक तार्किक ज्ञान के द्वारा ही संभव है। परंतु आस्था और श्रद्धा आध्यात्म सहित कुछ विषय ऐसे हैं जहाँ तार्किकता को आधार नहीं बनाया जाता वहाँ लोकविश्वास और अपना स्वयं का अनुभव काम करता है। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह तार्किकता के मान्य सिद्धांतों से आगे की सोच का विकास अपने विद्यार्थियों में करें। बच्चों को आज भी परियों, राजा रानी, दैत्यों, आदमी की बोली बोलने वाले पशु-पक्षियों, जानवरों में बदल गए आदमी की कहानियाँ सुनाई जानी आवश्यक है। ये कथाएँ बाल संसार के सामने एक पूरी दुनिया को प्रस्तुत कर देती हैं। बच्चों की कल्पनाशीलता विकसित होती है। वे यथार्थ और कल्पना में भेद करना सीख जाते हैं। जो जीवन में आगे चलकर काम आता है। यह सही है कि इंसान की बोली बोलने वाले जानवर और परियाँ होती ही नहीं। जानवर आदमी में या आदमी जानवर में नहीं बदल सकता। लेकिन कल्पना और चमत्कार के रंग में रंगी हुई स्वप्नलोक की ये कहानियाँ, लोक कथाएँ बच्चों को यह पाठ पढ़ाने में सक्षम हैं कि असत्य अधिक देर टिकता नहीं और अंत में उसे दंडित होना ही पड़ता है वहीं सत्य सदैव विजयी होता है। ऐसा साहित्य बच्चों को उत्तम शिक्षा देने के उद्देश्य से ही रचा गया है। पंचतंत्र-हितोपदेश की कथाएँ शिक्षा के उद्देश्य से रची गई हैं। बच्चे सपने बुनें और अपने जीवन के भविष्य की कल्पनाएँ करें यह उनके मानसिक विकास और स्वास्थ्य के लिए जरुरी है। यथार्थ जीवन की कठोरताओं को झेलने के लिए ये कथाएँ उपयोगी हैं।

भाषा शिक्षण की परंपरागत रेखाएँ

भारतीय भाषाओं का शिक्षण आज भी चाहे अनचाही कुछ परंपरागत रेखाओं पर ही चल रहा है या सिमटा हुआ है। इन रेखाओं को अभी भी पूरी तरह से बदला नहीं जा सका। प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है। भाषा के शिक्षण में एक अच्छा नवाचारी शिक्षक परंपरागत शिक्षण से अलग हटकर अपने विद्यार्थियों में जिज्ञासा उत्पन्न करना, तर्क करने की प्रेरणा देना, प्रश्न करना, संवाद कायम करना, समस्या रखना, मिलजुलकर सीखना, हल खोजना और सृजन करना भी सिखाता है। गीतों कहानियों अभिनय संगीत चित्रकला जैसी गतिविधियों के प्रयोग से विद्यालय और परंपरागत शिक्षण रेखाओं को बदलकर उनमें नया रंग भरा जा सकता है।

भाषा शिक्षण कक्ष के बाहर का विस्तृत भाषा संसार

भाषा सीखने और सीखाने की प्रक्रिया कभी भी सीधी रेखाओं में नहीं चलती। उसमें विभिन्न मोड़, उतार चढ़ाव आते रहते हैं। जिन्हें भाषा शिक्षक प्राय: अनदेखा करते हैं। विद्यालय की भाषा के कक्षा के बाहर एक विस्तृत भाषा संसार बच्चों के लिए खुला पड़ा है यथा पास-पड़ोस की भाषा, गली नुक्कड़ की भाषा, विभिन्न नारे, विज्ञापन, पोस्टर और दुकानों के बोर्ड की भाषा। यह भाषा संसार जाने अनजाने में भाषा सिखाता रहता है और हम जितना अपने लिए आवश्यक और उपयोगी समझते हैं उतना ग्रहण करते रहते हैं। भाषा की शिक्षा की जब बात की जाती है तो हम कक्षा में पढ़ाई जाने वाली भाषा और व्याकरण की ही बात करते हैं। लेकिन विभिन्न अवसरों पर दूसरे व्यवसायों और उनसे संबंधित व्यक्तियों की भाषा का ज्ञान समझ और वार्तालाप आवश्यक है जैसे- डाक्टर से बातचीत, दुकानदार से वस्तुओं को क्रय करने संबंधी संवाद, मेलों उत्सव के अवसर पर परिचित-अपरिचित व्यक्तियों से सहज रूप से जानकारी लेना और देने संबंधी बातचीत। रेलवे स्टेशन, बस स्टाप और सरकारी, गैर-सरकारी कार्यालयों में अपने कार्य से संबंधित वार्तालाप करने संबंधी भाषिक कौशल को भी विद्यार्थियों में विकसित किया जाना चाहिए। सही भाषिक संप्रेषण के अभाव में प्राय: विद्यार्थी झिझकते हैं और वे अपनी सही बात भी प्रस्तुत करने में संकोच का अनुभव करते हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों के लिए बच्चों में भाषा दक्षता विकसित की जाए। विद्यार्थी आपस में एक दूसरे का साक्षात्कार लें और दें। ऐसी 'एक्टीविटी' से बच्चे भाषा के संस्कार तो ग्रहण करते ही हैं साथ ही वे व्यवहार कुशल भी हो जाते हैं। जिससे वे अपरिचित परिस्थितियों और घटनाओं में भी भाषा का सही प्रयोग करना सीख जाते हैं।

अर्ली लिट्रेसी कार्यक्रम

भाषा शिक्षण को दृष्टिगत रखते हुए 'अर्ली लिट्रेसी' प्रोग्राम देश के कुछ विद्यालयों में चलाया जा रहा है। प्रारंभ में जब बच्चे स्कूल आते हैं तो उनका परिचय छपी हुई चित्रात्मक पुस्तकों से कराया जाता है। बच्चे पुस्तक लेकर उनमें छपे चित्रों को देखकर बोलने लगते हैं और आपस में एक दूसरे से बातचीत भी करते हैं। इस प्रकार बच्चे अपने ढंग से अपनी रुचि के अनुसार भाषा सीखने और पढ़ने का प्रयास करते हैं। स्व-प्रेरित होकर वे विभिन्न एक्टीविटी भी करने लगते हैं जैसे– पुस्तक फाड़ देना, फिर चिपकाना, कुछ लिखने, चित्र बनाने का प्रयास करना इत्यादि। इस कार्यक्रम के अंतर्गत कक्षा एक और दो की कक्षा में ही 'बच्चों का कोना' विकसित किया गया है जिसमें बच्चों हेतु कुछ पुस्तकें रखी गई हैं प्रत्येक विद्यार्थी अपने आप स्वयं की रुचि की पुस्तक चुनकर स्वतंत्र रूप से पढ़ता खेलता और विभिन्न भाषिक क्रियाएँ करता है शिक्षक प्रत्येक बच्चे की एक्टीविटी पर नजर रखते हैं और नोट करते रहते हैं कि बच्चे किस प्रकार की क्रियाएँ कर रहे हैं। प्रारंभ में ही बच्चों का परिचय छपी पुस्तकों से कराना और उन्हें विभिन्न एक्टिविटी करने देना बच्चों को तनावमुक्त वातावरण प्रदान करता है। विद्यालय का वातावरण खुशियों से भरा हुआ होना चाहिए। 'अर्ली लिट्रेसी' प्रोग्राम में इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है।

चित्रात्मक पुस्तकों से बच्चों की पढ़ने की रुचि जाग्रत होती है

कक्षा शिक्षण में यदि बच्चों को पुस्तक पढ़ने लिखने के कारण दुख: झेलना पड़ता है तो बच्चों का मन पढ़ाई से उचट जाता है इसी कारण प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को पढ़ने लिखने के लिए प्रेरित करना है। प्रारंभ से ही सही गलत पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है। कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो पढ़ने-लिखने संबंधी त्रुटियों को सजा और अपमान से जोड़ने लगते हैं। वे अपने को बुद्धिहीन मूर्ख और अपमानित समझने लगते हैं। अत: यहाँ प्रारंभ में ही भाषा शिक्षक को सावधान होकर कार्य करना है। यह भी देखने में आया है कि शिक्षक बच्चों से जैसी उम्मीदें रखते हैं, बच्चों का प्रदर्शन भी वैसा ही हो जाता है। ''प्रारंभिक स्तर पर अधिक से अधिक चित्रात्मक पुस्तकें बच्चों को दी जाएँ।'' बच्चों की भाषायी अभिव्यक्ति के लिए चित्रों पर बातचीत कर चित्र वर्णन के साथ बच्चे अपने अनुभव जोड़ने का प्रयास करने लगते हैं। वे चित्रें को देखकर नया अर्थ भी प्रदान करने लगते हैं। वाक्य रचना करने की क्षमता बच्चों में स्वाभाविक तौर पर जन्मजात होती है।

सही लिखने पढ़ने में शिक्षक को बच्चों की सहायता करनी है। बच्चों के किए गए कार्य की जाँच सजा के रूप में नहीं बल्कि प्रोत्साहन देने वाली हो।

बाल साहित्य की व्यवस्था प्रत्येक विद्यालय में अनिवार्य है

प्रत्येक बच्चे के अंदर भाषा सीखने की क्षमता स्वाभाविक रूप से होती है। यह एक अर्जित गुण है। प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को भाषा सीखने के साथ भारी भरकम व्याकरण, उसके नियम और वर्तनी इत्यादि का ज्ञान नहीं होता है। बच्चे अपने वातावरण में मौजूद संसाधनों को अपनी जरुरत के अनुरूप भाषा से तादात्मय स्थापित करते हैं। बच्चों के भाषा के साथ इस तादात्मय में विद्यालय के कक्षा शिक्षण में शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि उनकी बात सुनी जाए जिससे उन्हें वातावरण में समायोजित होने के सहज रुचिपूर्ण और सार्थक अवसर प्राप्त हों। विद्यालय प्रशासन और शिक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों को पढ़ने-लिखने के अवसर मुहैया कराएँ। इसके लिए बाल साहित्य की व्यवस्था कक्षा में होने से बच्चे स्वतंत्र रूप से अपनी रुचि और पसंद की पुस्तकें पढ़ना उसके चित्र देखना, स्वयं की कल्पना से चित्र बनाना जैसी एक्टिविटी से अपने लेखन में सर्जनात्मकता लाना चाहते हैं। यहाँ भाषा शिक्षकों का दायित्व है कि वे बच्चों की सहायता करें यथा– (i) बच्चों को पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया से जोड़ने के निरंतर और अनेकविध प्रयास करते रहना चाहिए। (ii) बच्चों को पढ़ने लिखने के अनेक अवसर उपलब्ध कराएँ। शिक्षकों की ओर से किसी भी दशा में निराशा का भाव प्रकट नहीं करना है जैसे– ये बच्चा पढ़-लिख नहीं पाएगा। (iii) बच्चों के अपने परिवेश के पूर्व अनुभव और संदर्भ से जोड़ने का अनुमान लगाने उसकी अभिव्यक्ति क्षमता बढ़ाते समय शिक्षक त्रुटियाँ निकालने के स्थान पर यह देखें कि वह कितना जानते हैं। इस स्थिति में बच्चे अपने अक्षर ध्वनि संकेत को मजबूत करते हैं। (ii) लेखन और पठन में नए-नए शब्दों का उपयोग विभिन्न भाषिक एक्टीविटी कराने से बच्चों की रुचि बढ़ती है।

लिखना सिखाने की शुरुआत

चार भाषीय कौशलों में सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना आता है। इनमें लिखने का कौशल पहले तीन कौशलों की अपेक्षा अधिक कठिन माना जाता है। इसलिए बच्चों को लिखने की शुरुआत कराते समय शिक्षक सर्वप्रथम-

- बच्चों को आड़ी-तिरछी लाइन खींचने का अभ्यास कराएँ।
- बिंदुओं से बने वर्णों के ऊपर पेंसिल से लिखने की शुरुआत की जाए।

- सीधी लाइन एवं बिंदुओं को जोड़कर सुलेख का अभ्यास कराया जाए।
- प्रारंभ में बिना मात्रा के अक्षर और शब्दों को लिखने का अभ्यास कराया जाए।
- आकृति एवं सीधी पंक्ति बनाकर लिखावट साफ होनी चाहिए।
- एक दो पृष्ठ का सुलेख अभ्यास प्रतिदिन।
- अक्षर के बीच स्थान शब्द स्पष्टता के लिए आवश्यक।
- लिखने के लिए पेंसिल का ही प्रयोग किया जाए।

बाल साहित्य प्रारंभिक स्तर पर बच्चों के लिए उपयोगी है इसके बिना शिक्षण एवं पढ़ना लिखना अधूरा ही हैं। बच्चों में पढ़ने-लिखने की ललक बाल साहित्य से ही स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाती है। वे पढ़ने-लिखने की कोशिश करने लगते हैं। बच्चे बाल साहित्य में स्वयं के अनुभव तलाशकर आनंद की अनुभूति करते हैं। वे चित्रों को देखकर सोचते हैं और नई कहानी भी बनाने लगते हैं। चित्रों की नकल करके चित्र बनाकर सीखते रहते हैं।

प्रारंभिक स्तर की मजबूती

बच्चों को मातृभाषा में पढ़ना रुचिकर तो लगता ही है साथ ही उन्हें सीखने के भी प्रर्याप्त अवसर मिलते हैं। खेल-खेल में पढ़ना इस स्तर पर प्रभावी तरीका ही है। बच्चे अक्षरों शब्दों की पहचान करके ही पढ़ने लिखने में सुधार करते हैं। परंतु प्रारंभिक साक्षरता के प्रयास कक्षा एक के पहले दिन से हो तो अधिक सार्थक परिणाम प्राप्त होते हैं ऐसा स्पष्ट अनुभव किया गया है। बुनियादी स्तर की शिक्षा पर ही बच्चों का भविष्य निर्भर करता है अत: पठन-पाठन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाए। दैनिक उपयोगी वस्तुएँ और आसपास के वातावरण से पढ़ने की रुचि और सोच विकसित होती है इनका यथासंभव इस्तेमाल किया जाए। चित्रों, अक्षरों और शब्दों की सही पहचान से बच्चों के पठन-पाठन में सुधार आता रहता है। विद्यालय की दीवार का उपयोग बच्चों को उनके कृतित्व के निकट रखने के लिए किया जा सकता है। बच्चा जब अपनी कृति दीवार पर देखता है तो उसे पढ़ने-लिखने के उत्साह में वृद्धि होती है। विद्यालय में अपने अस्तित्व का उसे कुछ अतिरिक्त मजबूत आभास मिलता है जो उसे रजिस्टर में अंकित संख्या से नहीं मिलता।

शिक्षक की क्षमता बच्चों के सीखने पर निर्भर है

प्रारंभिक कक्षा में बच्चे स्वयं को कहानी से जोड़ने की कोशिश भी करते हैं। इस दृष्टि से अनेक गतिविधियाँ उपयोगी हैं। जिनके माध्यम से कक्षा में पाठ ठीक ढंग से समझा

जाए। वर्ण अक्षर और मात्राओं की जानकारी सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत की जाए। सीधे पुस्तक पाठ पढ़ाना उचित नहीं है। यहाँ यह भी विचार करना आवश्यक है कि शिक्षक की अभिक्षमताओं पर बार-बार प्रश्न उठाया जाता है। मेरा मानना है कि शिक्षक की सही अभिक्षमता की जाँच उसके उत्पादन अर्थात बालक की उपलब्धि से की जानी चाहिए। यदि बच्चों के स्नेह एवं उनके रुचिपूर्ण ढंग से पढ़ाया जाए तो यह अधिक उपयुक्त रहेगा। बच्चों से आज की बात, आपकी बात, हमारी बात चाहे जैसे भी चाहे खेल के माध्यम से प्रेरित कर सभी बच्चों के लिए समय नियोजन का प्रयास किया जाए। बच्चों की आवश्यकताओं और समस्याओं को दृष्टिगत रखकर कुछ विशेष तकनीकी प्रयास जैसे– सहपाठी सहयोग, वैयक्तिक अवलोकन, सहयोगात्मक शिक्षण इत्यादि के द्वारा सारे बच्चों को शिक्षण में सम्मिलित किया जाए।

भाषा शिक्षण के प्रति शिक्षक का नज़रिया

विद्यालय में पढ़ रहे बच्चों के अभिभावकों के साथ परामर्श कर उन्हें बच्चों की प्रगति से अवगत कराते रहना चाहिए। यह कार्य जरुरी है अन्यथा बाद में कठिनाई आती है। भाषा शिक्षण पर शिक्षक का नज़रिया, परिवार पास-पड़ोस की पृष्ठभूमि माता पिता का शैक्षिक स्तर छात्र अनुपात और भाषा का माध्यम आदि का प्रभाव बच्चों के पढ़ने-लिखने और शैक्षिक गतिविधियों पर पड़ता ही है। कुछ बच्चे अन्य विद्यार्थियों के साथ तालमेल नहीं बिठा पाते। यहाँ शिक्षक उन कारणों को ढूँढे जो ऐसी परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी हैं। ऐसे बच्चों को शिक्षक और सहपाठियों से विशेष सहायता की जरुरत होती है शिक्षक ऐसे बच्चों की आवश्यकताओं को समझकर उन्हें पूरा करें। सारे बच्चे जब निर्भय होकर पढ़ने-लिखने में रुचि लेने लगें अक्षर शब्द वाक्य के ध्वनि संकेतों की समझ बढ़ने लगे उस समय शिक्षण सूत्र– (i) 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' (ii) 'संपूर्ण से अंश की ओर' (ii) 'सरल से कठिन की ओर' बढ़ना चाहिए ताकि बालक वर्णमाला, मात्राएँ, शब्द रचना और वाक्य जैसे जटिल सम्प्रत्यों को आत्मसात कर उनका प्रयोग एवं अभ्यास सीख सकें।

भाषा सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में सारी सफलता सिर्फ इस एक बात पर निर्भर करती है कि भाषा अध्यापक का दृष्टिकोण भाषा शिक्षण और बच्चों के प्रति किस प्रकार का है। कहा भी गया है कि- ''जैसी दृष्टि होगी वैसी ही सृष्टि होगी''। शिक्षण के संदर्भ में भी यही बात सत्य है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 1, अप्रैल 2015

चिंतक और चिंतन

पंडित मदन मोहन मालवीय का जीवन-दर्शन एवं मानव-निर्माण की शिक्षा

अजय कुमार सिंह* एवं **विनोद कुमार सिंह****

पं. मदन मोहन मालवीय का नाम उन महापुरुषों में अग्रणी है जिन्होनें बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत को अपने संज्ञान एवं मनीषा से आलोकित किया। वे एक साथ अनेकानेक व्यक्तित्व के स्वामी अर्थात राष्ट्र-निर्माता, स्वाधीनता सेनानी, ओजस्वी वक्ता, देश-भक्त, साहित्यकार, दार्शनिक, चिंतक, धर्मानुरागी, पत्रकार, विधिज्ञाता, शिक्षाविद् व निष्काम कर्मयोगी थे। उन्होनें युग के स्पंदन को पहचान कर भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक जीवन में नव-जागरण का संचार किया। वह आधुनिक भारत के निर्माता और युगदृष्टा थे। मानवता मनुष्य को वास्तव में अन्य प्राणियों अर्थात समस्त सजीव प्राणी से अलग करके उसे यथार्थ मानव के रूप में परिणित करती है और महामना के व्यक्तित्व की अनेकानेक विशेषताओं से मानवता प्रस्फुटित होती है। महान मानवतावादी पं. मदन मोहन मालवीय जी को पीड़ितों के लिए आत्म-त्याग करने वाले राजा रंतिदेव का प्रसंग उन्हें प्रिय था, महाभारत महाकाव्य में बतायी गई शिवि के निम्न श्लोक को, अपने जीवन आदर्श के रूप में प्रतिष्ठापित किया-

न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दु:ख तप्तानाम् प्राणिनामार्तनाशनम्।।

अर्थात ''मुझे राज्य, स्वर्ग और मोक्ष की कामना नहीं है, मैं तो दु:खों से तप्त प्राणियों के दु:ख का निवारण करना चाहता हूँ।'' महामना सभी प्राणियों का संताप मिटाना ही व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य मानते थे। महामना मानवतावादी थे, उनके सम्पूर्ण चिंतन का केंद्र मानव था। मानवोत्पत्ति के साथ ही मानवीय मूल्यों का भी प्रादुर्भाव हुआ। ऐसे सभी मूल्य

*सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय(क), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय(क), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जो मानव जीवन को एकीकृत, सुंदर एवं कल्याणकारी बनाते हैं उन्हें मानव मूल्यों की संज्ञा दी जा सकती है। मालवीय जी ने समस्त लोगों व समुदाय के मानवीय अधिकार एवं नागरिक उदारीकरण हेतु भारत की अखंडता, विविधता, पंथ निरपेक्षता, आदि की खुबसूरती को ध्यान में रखते हुए प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में कार्य किया। मानव निर्माण व मानवता के लिए वे आजीवन सदा समर्पित रहे।

महामना का जीवन दर्शन एवं मानवता-संदेश

महामना ने अपना जीवन भारतीय संस्कृति को केंद्र बिन्दु में रखकर सम्पूर्ण जीवन को व्यावहारिक रूप में जियाय भारतीय संस्कृति के सिद्धांतों को अपने जीवन में कर्मशील किया। महामना इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं कि सिद्धांतों को कैसे जीवन जीने में व्यावहारिक एवं साकार रूप प्रदान किया जाय। मानव समाज में अपने जीवन कर्मो से आदर्श उपस्थित किया, जिसके कारण मानव समाज ने उन्हें विशिष्ट मान प्रदान करते हुए 'महामानव' के रूप में आत्मसात किया। यह महामानव महामना के रूप में हमारे जीवन में समय-समय पर क्रमशः प्रवीष्ट हो गए, महामना के जीवन-केंद्रित कुछ दार्शनिक सिद्धांत निम्न रूप में परिलक्षित होते हैं जिससे हमें मानवतावादी-संदेश की प्राप्ति होती है:

राष्ट्रीयता

मालवीय जी के अनुसार राष्ट्रीयता उस भाव का नाम है जो देश के सम्पूर्ण निवासियों के हृदय में देशहित की लालसा के साथ व्याप्त हो, जिसके आगे अन्य भावों की श्रेणी नीची रहती हो। मालवीय जी के विचारों में समझदार नागरिक के लिए राष्ट्रीयता भी एक महान धर्म है। इसकी रक्षा के लिए वह अपने हृदय से सारे स्वार्थ को निकाल कर फेंक देगा। वह अदूरदर्शी, स्वार्थियों और खुशामदियों की तरह ऐसे कार्य कदापि न करेगा, जिससे कि देशवासियों को हानि पहुँचे, बल्कि दूरदर्शी, परमार्थी, सत्यशील और दृढ़ताप्रिय आत्माओं की भाँति असंख्य कष्ट उठाते हुये भी वह ऐसा ही आचरण अपनाएगा जिससे देश का भला हो, निर्धन-धनवान, निर्बल-बलवान और मूर्ख भी बुद्धिमान हो जाए, प्रत्येक प्रकार के सामाजिक दुःख मिटे दुर्भिक्ष आदि विपत्तियाँ दूर होकर लाखों बिलबिलाती हुई आत्माओं को सुख पहुँचे। देशभक्ति द्वारा इतने धर्मों का सम्पादन होता हुआ देखकर भी यदि जो धर्म के आगे देशभक्ति को कुछ नहीं समझता, उस पुरूष को जान लीजिए कि वह धर्म के मर्म को ही नहीं समझता।

इतिहास साक्षी है देश को जब आत्मनिर्भरता के साथ अपने पैरों पर उठ खड़े होने के लिए बलिष्ठ कंधों के सहारे की विशेष रूप से आवश्यकता हुई तब महामना अपने

तेजोमय कालजयी व्यक्तित्व के साथ आगे आए और इसका मार्ग प्रशस्त किया। इस क्रम में जहाँ अन्य जननायकों का ध्यान विदेशी शासन से देश को स्वतन्त्र कराने की ओर था, वहीं महामना की ऋषिदृष्टि इससे भी आगे जाकर भारतवर्ष को एक ऐसे स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अग्रसर करने की ओर संकल्पित हुई, जो अपनी रक्षा व सुख समृद्धिमय विकास की पटकथा को स्वयं लिखने व गढ़ने में, आत्मनिर्भरता के साथ, सक्षम हो और सार्वभौम बन सके।

कर्तव्यनिष्ठता

अकुण्ठं सर्वकार्येषु धर्मकामार्थमुद्यतम्।
वैकु.ठस्य च यद्रू पं, तस्मै कार्यात्मने नमः।।

भीष्मस्तवराज का यह श्लोक मालवीय जी के जीवन का आदर्श वाक्य था। जिस कार्य में मालवीय जी एक बार लग जाते थे, उसे सच्ची लगन एवं तन्मयता से करते थे। विश्वविद्यालय की स्थापना का एक बार जब उन्होनें त्रिवेणी के पावन तट पर संकल्प कर लिया, तब उनकी उपासना व अनुष्ठान का बस वही एक मात्र विषय था, मालवीय जी साहस नहीं छोड़ते थे। वे उन महापुरूषों में थे जो बाधाओं पर ध्यान नहीं देते।

जीवन संग्राम में बिना विचलित हुए अनेकोंनेक बार अपनी कर्तव्यनिष्ठता धर्म को निःस्वार्थ भाव से निभाते हुए दिखाई पड़ते हैं। कर्तव्य परीक्षाओं में नूत नवीन मानकों की स्थापना करते हैं। अति दरिद्रता में बचपन गुजारने के बाद अपनी योग्यता के बलबूते समाज में एक सम्मानित, प्रतिष्ठित व धन्य–धान्य से पूर्ण नागरिक के रूप में अपने को स्थापित करते हैं लेकिन समाज व राष्ट्र के लिए अपना कर्तव्य निभाते हेतु सब कुछ त्याग कर एक भिक्षुक बन जाते हैं, जो राष्ट्र निर्माण के लिए दर-दर भटकता हैय कर्तव्यनिष्ठता प्रमुख है मान-अपमान सब विस्मृत हो जाता है।

''विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना, आरभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति।''

चाहे किसी धार्मिक कृत्य का सम्पादन हो और चाहे किसी राजनीतिक कार्य का निर्वाह हो वे समान अश्रांत निष्ठा से उन कार्यों का सम्पादन करते थे।

आस्तिक्य

मालवीय जी का विश्वास था कि 'घट-घट' में ईश्वर व्याप्त है और जो कुछ भी संसार में घटित हो रहा है वह प्रभु की प्रेरणा से ही घटित हो रहा है। ईश्वर का एक विधान है जिसके व्यवस्थापन में मानव 'निमित्त मात्र' है। मालवीय जी विचार तथा कर्म में आस्तिक थे। मालवीय जी की दार्शनिक विचारधारा का स्रोत श्रीमद्भागवत था जिसकी

कमनीय उक्तियाँ उनकी जिह्वा पर नाचती थी, एक बार विश्वविद्यालय में समाहूत ऑल इण्डिया फिलासाफिकल काँग्रेस के विशिष्ट दार्शनिकों को 'ईश्वर सिद्धि' पर अपने दार्शनिक भाषण से मालवीय जी ने इतना प्रभावित किया कि वे हतप्रभ हो गए। उन्होने ऐसी अकाट्य युक्तियाँ प्रस्तुत कीं, कि समस्त विद्वान चमत्कृत हो उठे।... महामना कहते हैं कि यह विश्वास कैसे हो कि ऐसा कोई परमात्मा है? जो वेद कहते हैं कि यह परमात्मा है, वही यह भी कहते हैं कि उसको हम आँखों से नहीं देख सकते –

न संदृशे तिष्ठती रूपमस्य न चक्षुशा पश्यति कश्चनैनम्।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कल ध्यायमानः ।।

अर्थात 'ईश्वर को कोई आँखों से नहीं देख सकता, किन्तु हममें से हर एक मन को पवित्र कर विमल बुद्धि से ईश्वर को देख सकता है।' इसलिए जो लोग ईश्वर को मन की आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मन को पवित्र कर और बुद्धि विमल कर ईश्वर की खोज करें।... उसी एक अनिर्वचनीय शक्ति को हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान, वसुदेव, शिव, राम, कृष्ण, जिहोवा, गॉड, खुदा, अल्लाह आदि सहस्त्रों नामों से पुकारते हैं।

महामना (काशी, वैशाख शु. 9, सं. 1989) कहते हैं कि 'धन्य हैं वे लोग जिनको इस पवित्र और लोक – प्रेम से पूर्ण धर्म का उपदेश प्राप्त हुआ है। मेरी यह प्रार्थना है कि इस ब्रह्मज्योति की सहायता से सब धर्मशील जन अपने ज्ञान को विशुद्ध और अविचल कर और अपने उत्साह को नूतन और प्रबल कर सारे संसार में इस धर्म के सिद्धांतों का प्रचार करें और समस्त जगत को यह विश्वास करा दें कि सबका ईश्वर एक ही है, और वह अंशरूप में न केवल सब मनुष्यों में, किन्तु समस्त जरायुज, अण्ड्ज, स्वेदज, उद्भिज, अर्थात मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष और विटप सबमें समान रूप से अवस्थित है और उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणीमात्र में ईश्वर का भाव देखें, सबसे मित्रता का भाव रखें और सबका हित चाहें। सार्वजनीन प्रेम से, इस सत्य ज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें। जगत से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें।' जो कि आचार्य महर्षि वेदव्यास की, जो 'सर्वभूतहिते रतः' सब प्राणियों हित में निरत रहते थे, इस प्रार्थना से महामना के भाव प्रकट है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

अर्थात सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें, और किसी को भी दु:ख का भागी न बनना पड़े।

आत्मविश्वास

वे आत्मविश्वास के पूंजीभूत प्रतिभा थे। अपनी शक्तियों के ऊपर मालवीय जी में अटूट विश्वास था। गीता का उपर्युक्त श्लोक वे प्राय: उदधृत किया करते थे। वे आत्मा को अनन्त शक्तियों का निकेतन मानते थे। उनमें आस्तिव्य, कर्तव्यनिष्ठा, उत्साह एवं आत्मविश्वास का प्रचण्ड प्राबल्य था। वे एक सात्त्विक कर्त्ता थे। आसक्ति से रहित, अहंकार से सर्वथा शून्य, धैर्य एवं उत्साह का समन्वय तथा कार्य की सिद्धी-असिद्धी में किसी प्रकार की विकृति न रखना, अर्थात कार्य सिद्ध हो जाय तो कोई हर्ष नहीं, यदि असिद्ध हो जाय तो कोई विषाद नहीं, ये सब सात्त्विक के लक्षण हैं (गीता, 18/26)। मालवीय जी में 'गीता' के 'सात्विक कर्ता' के सभी गुण विद्यमान थे, साथ ही उनमें महात्मा के वे छ: गुण भी पूर्ण वैभव के साथ प्रकट थे जिनकी चर्चा निम्न श्लोक में की गयी है :

विपदि धैर्यमथाअभ्युदये क्षामा
सदसि वाकपटुता युधि विक्रम:।
यदृासि चाभ्रिूचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृति सिद्धिमिदं हि महात्मनाम्।।

विपत्तियों में धीरता, अभ्युदय में क्षमा, सभा में वाक्-चातुरी, युद्ध में विक्रम, यश में अभिरुचि तथा शास्त्र श्रवण में अनुराग – ये छहों की सत्ता महामना में पूरे रूप में थी। 'महामना' उपाधि भी उनपर सर्वथा चरितार्थ होती थी। आत्मविश्वास महामना का परम सम्बल था। उनका विचार है कि जो अपने ऊपर, अपनी आत्मा में विश्वास करता है, उसका कोई भी कार्य अवरुद्ध नहीं होता आत्मा, परमात्मा का अंश है। उनकी दृष्टि में कोई किसी का शत्रु अथवा मित्र नहीं, बल्कि शत्रु या मित्र सभी अपने अभ्यन्तर में है। जो आत्मजित् है उसकी आत्मा मित्र, और आत्मजित् न होने वाले की आत्मा ही उसकी शत्रु है। इस प्रसंग में गीता (6/5) का यह दृष्टांत सदा स्मरणीय है -

उद्धारेदात्मनाअत्मानं, नात्मनमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:।।

उत्साह

उत्थातव्यं जाक्रृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मन: कृत्वा सततमव्यथै:।।

यह मालवीय जी का प्रिय श्लोक था। वे अदम्य उत्साह के प्रगतिशील उत्स थे। उनका विश्वास था कि विधिवत कार्य करने पर सिद्धि अवश्य ही मिलती है, इसलिए असफलता की व्यथा उन्हें खटकती ही न थी। वे कहा करते थे कि जब तक असफलता मनुष्य की छाती पर बैठकर उसका गला न घोटे, जब तक आशा की एक फीकी किरण भी दूरस्थ क्षितिज पर दिख पड़े तब तक मनुष्य को निराश नहीं होना चाहिए।

दीर्घ रोग से क्षीणकाय होने पर भी उन्होंने पंडितों से कहा था– ''आज मेरा शरीर इस रोग से अवश्य ही क्षीण और निर्बल हो गया है, परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं पूर्ववत् स्वस्थ्य हो जाऊँगा। वह केवल एक निष्पन्न स्थाणु रह जाता है, परन्तु शीघ्र उसमें नयी-नयी कोमल पत्तियाँ निकल आती हैं। उसे देखकर मैं जीवन से कभी हताश नहीं होता। मेरी क्षीण काया पुनः पूर्ववत् बल-सम्पन्न तथा पुष्ट हो जायेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है।''

धर्मनिष्ठा

घट-घट व्यापक राम जप रे।
मत कर वैर, झूठ मत भाखै - मत परधन हर, मत मद चाखै।
जीव मत मार, जुवा मत खेलै - मत परतिय लख, यह तेरो तप रे।
घट-घट व्यापक राम जप रे। घट-घट व्यापक राम जप रे।

मालवीय जी का यह पद बहुत प्रसिद्ध एवं प्रचलित है। उनकी निष्ठा एकेश्वरवाद में है जो सर्वव्यापी है जिसके इंगित मात्र से विश्व का संचालन हो रहा है। मालवीय जी के शब्दों में, स्नहमारे समक्ष एवं इर्द-गिर्द जो भी वस्तु है वह ईश्वर के अस्तित्व का ढिंढोरा पीटती है ईश्वर संसार की प्रत्येक वस्तु में है। संसार में वही वास्तविक सत्य है। उससे परिचित होना जीवन का सर्वोच्च सुख है।ख्र ईश्वर की सिद्धि के लिए तर्क का आश्रय वृथा प्रयास है।

''व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत् चेतन धन आनन्द रासी।।''

इस प्रकार मालवीय जी मनुष्य को ईश्वर के एक अंग के रूप में ईश्वररूपी मानव स्वीकार करते हैं।

सामाजिक कल्याण

महामना जी के जीवन के सर्वप्रमुख सिद्धांतों में था कि 'मानव जाति की सेवा भगवान की सेवा है।' उनके सेवा धर्म के अनुसार, हर-एक जरूरतमंद की अपनी क्षमता के अनुसार सेवा करनी चाहिए। उन्होंनें सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के उद्देश्य से ही केवल

सेवा को प्रसारित नहीं किया बल्कि सम्पूर्ण मानवता के विकास व सृजन के लिए भी किया। वे आजीवन बिना किसी स्वार्थपूर्ण अपेक्षा के सेवा कार्य में संलग्न रहे। मालवीय जी के अनुसार, 'प्रत्येक व्यक्ति का यह धार्मिक कर्तव्य है कि वह सामाजिक कल्याण में अपनी सहभागिता प्रदान करे।' समाज सेवा उनका जीवन-प्राण था। उन्होनें निस्वार्थ सेवा को व्यक्तित्व के विकास का साधन बताया।

महामना दर्शन संयमित मन को ज्ञान–विज्ञान से ज्योतिर्मय बनाकर उसके आलोक में जीवन को लोकोपकारी पूर्णता में प्रतिष्ठित करने का एक अभिनव विधान है। सर्वजनहितकारी इस दर्शन के सिद्धांत सूत्रों का उद्घोष महामना के एक अत्यन्त प्रिय व उपदेशपरक श्लोक में निदर्शित हो रहा है –

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽत्यागेन सम्मानर्हः सदाभव।।

अथार्त सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के योग्य बनो।

अथवा प्रियजन! सत्यनिष्ठ आचरण, शुद्ध ब्रह्मरूप ज्ञान–विज्ञान के समन्वित अध्ययन, शारीरिक व मानसिक शुचितापूर्ण संस्कार, पूर्णतादायक आध्यात्मिक चिन्तन, देश व समाज के उत्थान में सक्रिय योगदान, तथा प्राणीमात्र के कल्याण हेतु सर्वस्व समर्पणरूप देवोपम–गुणों के सम्यक अनुशासन और परिपालन से सच्चे अर्थों में सम्मान व यश के अधिकारी बनो।

महामना की दृष्टि में उपर्युक्त दिव्य गुणों से सम्पन्न व्यक्ति, क्योंकि सृष्टि के समस्त चेतन-अचेतन रूप प्राणियों में सर्वोच्च संस्था के रूप में अधिष्ठित माना जाता है, इसलिए उसका यह नैतिक दायित्व व कर्तव्य बनता है कि वह एक अभिभावक के रूप में पीड़ित व उपेक्षित समस्त जनों के प्रति उन्मुख होकर उनके कल्याण एवं अभ्युदय के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दे। जीवन का यह सविनय उदात्त भाव ही मानवोचित पूर्णता का आदर्श प्रतिमान है।

मानव मूल्य

अध्ययनरत विद्यार्थी हमारे देश की नींव हैं और विद्यालयों द्वारा विद्यार्थियों को प्रदत्त ज्ञान जितना उन्नत होगा हमारा देश उतनी ही तीव्रता से उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त होगा। जिसकी कामना हम सभी भारतवासी मिलकर करते हैं जैसा कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त उद्धृत करते हैं -

मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती,
भगवान् भारत वर्ष में गूँजे हमारी भारती।
हो भव्य भावोद्भाविनी वह भारती हे भगवते!
सीतापते! सीतापते!! गीतामते! गीतामते!!।।

इस आदर्श की प्राप्ति के लिये बौद्धिक क्षमता के साथ-साथ देश के भविष्य निर्माताओं की नैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य चेतना भी विकसित होनी चाहिए। शिक्षा द्वारा मानव विकास के इस मूल्यात्मक पक्ष के महत्व को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मालवीय जी ने भली-भांति समझ लिया था। आज से सौ वर्ष से अधिक पूर्व ही सन 1905 में प्रकाशित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा था– 'व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए बौद्धिक विकास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है चारित्रिक विकास। ...मात्र औद्योगिक प्रगति से ही कोई देश खुशहाल, समृद्ध और गौरवशाली राष्ट्र नहीं बन जाता।... अतः युवाओं का चरित्र निर्माण करना प्रस्तावित विश्वविद्यालय का एक प्रमुख लक्ष्य होगा। उच्च शिक्षा द्वारा यहाँ केवल अभियंता, चिकित्सक, विधि-वेत्ता, वैज्ञानिक, शास्त्रज्ञ विद्वान ही नहीं तैयार कियें जाएँगे, वरन् ऐसे व्यक्तियों का निर्माण किया जाएगा जिनका चरित्र उज्ज्वल हो, जो कर्तव्य परायण और मूल्यनिष्ठ हों। यह विश्वविद्यालय केवल अर्जित ज्ञान के स्तर को प्रमाणित कर डिग्रियां देने वाली संस्था न होकर सुयोग्य सच्चरित्र नागरिकों की पौधशाला होगा।'

महामना की जन-जन की पीघ हरने वाले इस महान संकल्प की सीमा किसी देश-काल की परिधि में न बंध कर संसार के सभी प्राणियों के कल्याण-भाव के प्रसार-पर्यन्त परिकल्पित थी। इस कार्य हेतु पूरी पृथ्वी को ही वह एक कुटुम्ब (आत्मीय-जन-समूह) का मान देते थे। मनीषी-चिन्तकों से सहमत होते हुए स्वीकार करते हैं कि

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम।
उदारचरितानां तुं वसुधैव कुटुम्बकम ।।

अर्थात यह मेरा है, यह पराया है – इस प्रकार की भेद-बुद्धि छोटे (संकुचित) मन वालों की होती है, परन्तु उदारचरित (सर्वकल्याणकारी उदरमन वालों) के लिए तो पूरी पृथ्वी ही एक कुटुम्ब के समान दिखती है।

'महामनादर्शन' मन को मानव मूल्य से ज्योतिर्मय बनाने का वह विधान है, जो व्यक्तित्व-विकास की विधा को सही रूप में परिभाषित करता हुआ जीवन की सफलता का आज सार्वभौम प्रतिमान बन गया है।

व्यक्ति की स्वायत्तता

उनका जीवन दर्शन 'आत्म दीपो भव:' के मूल सिद्धांतों पर आधारित था, वे विशिष्टीकरण पर विश्वास करते थे। वह पहले व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास को महत्व प्रदान करते थे तब समाज के विकास कोय वह व्यक्ति के स्व-विकास में रुचि लेते हैं और स्वयं समाज के सम्मुख आगे बघ्कर कर स्व-विकास का अपना आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

'स्वतंत्रता जन्म-सिद्ध अधिकार है'– इसके प्रबल समर्थक महामना भी थे। इस संदर्भ में उन्हें भी अनेक बार कारागार में बन्दी रहना पड़ा। उन्होन्नें स्वतंत्रता पुजारियों की सभा को अनेक बार सम्बोधित करते हुए, उनके मनोबल को बढ़ाते और उत्साहित भी किया करते थे।

समानता एवं सह-अस्तित्व

महामना सनातनी हिन्दू थे और उन्हें प्राचीन रीति-रिवाजों से भारी लगाव था, किन्तु वह उन प्रथाओं और परम्पराओं को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते जो हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को अवनति की ओर ले जाने में सहायक थे। वह बाल विवाह, विधवा विवाह, दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा, स्त्री वर्ग के संकीर्ण सामाजिक स्तर तथा जाति प्रथा पर अंध विश्वास नहीं रखते थे, स्त्री समाज की उन्नति करने से राष्ट्र का अधिकाधिक भला होगा। भारतीय स्त्रियों की दशा सुधारने में इन दूषित परम्पराओं को समाप्त करने में महामना ने सक्रिय रूप से भाग लिया। महामना अछूतों के प्रति भी पर्याप्त प्रेम रखते थे और उनके सुधार पर ध्यान देते थे, उनकी दृष्टि में वे हिन्दू समाज के अभिन्न अन्ग थे और इस बात पर वे बार-बार बल दिया करते थे कि पिछड़े वर्ग के विकास के लिए हमें पूरा-पूरा प्रयास करना चाहिए। उन्होंनें कहा कि– मेरी समझ में नहीं आता कि करोड़ों गरीब हिन्दुओं को धर्माचरण और देवदर्शन से वंचित रखना कौन सा धर्म है ? यह वही काशी नगरी है, जहाँ रैदास और कबीर जैसे भक्त हुए हैं, जहाँ स्वयं शंकर भगवान ने चांडाल का वेश धर कर भगवान् शंकराचार्य को सब जीवों की एकता का उपदेश दिया था।... मेरे विचार शास्त्र के अनुकूल हैं, तो इन्हीं के अनुसार अछूतों की आर्थिक दशा सुधारकर, सदाचार सिखाकर, उनको मन्त्र-दीक्षा देकर उनका उद्धार करना हमारा धर्म है। उन्होंनें 'देवीभागवत पुराण' के आधार पर कहा कि 'विद्या – कुल की, जाति की, रूप की और पुरुष की और पुरुष-संबंधी पात्रता की परवाह नहीं करती किन्तु जो कोई भी उसको पढ़ता है, वह उसका उपकार करती है'–

न हि विद्याकुलं जाति रूपं पौरुष पात्रताम्।
वशते सर्वलोकानां पठिता उपकारिका ।।

महामना प्रकृति से प्यार करते थे एवं प्रकृति के निर्माता की प्रार्थना। वे प्रकृति की समानता का आदर करते हुए समाज की मुख्य-धारा से कटे हुये अछूतों को मंत्र-दीक्षा देने का साहस कर समानता लाने का प्रयास करते हैं; महिलाओं के जीवन को उच्च बनाने में अपना योगदान देते हैं यहाँ तक कि वे चिड़ियों, जानवरों आदि को भी अपने जीवन में सम्मान सहित सम्मिलित करते हैं।

महामना संकीर्ण धार्मिक और साम्प्रदायिक विचारों से बहुत घृणा करते थे, वे हिन्दू, मुस्लिम, इसाई, बौद्ध, आर्य समाज आदि सभी के मतों के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए व्यक्त करते हैं कि उन सभी के बीच भावनात्मक व बौद्धिक अन्योन्याश्रित संबंध है। सभी धर्म एवं समाज के सह-अस्तित्व की महत्ता को स्वीकार करते थे, हिन्दू समाज के साथ-साथ सभी समाज में आदर के साथ वक्तव्य देने के लिए आमंत्रित किए जाते थे। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति व समाज बिना किसी विरोधाभास के एक साथ रहे। उन्होंनें राष्ट्रीय व धार्मिक और साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने पर बल दिया, यदि सभी धर्म मिलकर राष्ट्रोन्नति और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपनी-अपनी शक्ति लगाएँ तो देश का अत्यधिक भला होगा, शक्तियों का सदुपयोग होगा।

विज्ञान व अध्यात्म तथा मानवकृस्वतंत्रता

शिक्षा के माध्यम से वह एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करते थे जो संयमी, निर्भीक, कर्तव्यपरायण, उत्साही, सहनशील एवं गम्भीर हो। उसका आधार उदारता, विनय और धर्म हो। इस प्रकार व्यक्ति तार्किकता के साथ-साथ अपनी संस्कृति व सभ्यता से नहीं कट सकता। उन्होंनें देशकाल को देखते हुए केवल शास्त्रीय शिक्षा पर ही बल नहीं दिया अपितु प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान को प्रधानता दी। उनके अनुसार निर्धनता को दूर करने के लिए देश के साधनों का समुचित उपयोग होना चाहिए और वह केवल औद्योगिकरण, नए आविष्कार तथा प्रौद्योगिक नवोन्मेषों द्वारा ही सम्भव है। इसीलिए सीमित साधनों के होते हुये भी उन्होंनें आरम्भ से ही औषधि, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास तीव्र गति से किया। प्राच्य और पाश्चात्य, ज्ञान और विज्ञान का सामंजस्य और विकासय प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा का पुन:स्थापन आदि आदर्शों को साकार करने में उन्होंनें सारा जीवन लगायाय कभी न तो 'निरग्नि' रहे और न 'अक्रिय'।

महामना विज्ञान और तकनीकी को महत्व प्रदान करते हैं और कहते हैं कि जीवन जीने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है लेकिन यह मानव जीवन पर प्रभुत्व स्थापित नहीं करेगा मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य स्थायी प्रेम को प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए। भौतिकता का मतलब अंत नहीं है बल्कि अध्यात्मवाद ही अंत होना चाहिए।

उन्होंनें प्रयोग करने के लिए कहा कि मानव विकास की प्राकृतिक प्रक्रिया मानव-स्वतंत्रता के आधार पर करना चाहिए। इस प्रकार वह अपने जीवन के हर पहलू में वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभ्यास किया तथा विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल दिया।

महामना के जीवन-दर्शन द्वारा मानव-निर्माण हेतु शैक्षिक अनुप्रयोग की प्राप्ति

आज महामना के विचारों के अपुरूप देशवाषियों के लिए शिक्षा पुन:संदर्भित किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार महामना जी के जीवन दर्शन से ऐसी शिक्षा की बात प्रस्फुटित होती है जो मानव का पूर्ण रूप में निर्माण कर सके अर्थात मानव के अन्तर्मन में मनुष्यत्व की भावना का विकास कर सके। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को स्वयं को भरने या स्वयं मानवता रूपी मनुष्यता का शेल्फ भरने से है। शिक्षा में कुछ प्रमुख अनुप्रयोग निम्न हो सकते हैं :

1. मानव के शरीर एवं मस्तिष्क का पूर्ण विकास,
2. मानव हित हेतु बुद्धिजीवियों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रति सम्मान,
3. मानव के अंदर मानव हितैषी वैज्ञानिकता का विकास,
4. मानव का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास,
5. मानविकी और विज्ञान विषय के बीच समन्वय,
6. मातृभाषा और भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान,
7. मानव में धार्मिकता (आत्मविश्वास, सह-अस्तित्व, जीवन व मानव मूल्य, व्यक्ति की स्वायत्तता, स्वतंत्रता, स्वानुशासन, निरूस्वार्थता आदि) की भावना का विकास,
8. लोकतांत्रिक सिद्धांतों का प्रचार तथा प्रसार,
9. मानव के चरित्र के निर्माण को सर्वाधिक महत्व,
10. मानव को जीवन के उद्देश्य प्राप्त करने हेतु सात्विक जीविकोपार्जन योग्य बनाना,
11. मानव अस्तित्व के ज्ञान के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता,
12. मानव के अन्तर्मन में प्राचीन संस्कृति के प्रति सम्मान और वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का विकास,
13. मानव में देश-भक्ति, मानव-प्रेम, मानव-सेवा आदि भाव भरना,
14. मानव के अन्तर्मन में संसार के समस्त जीवों के प्रति सदभावना का विकास,

15. मानव में नैतिकता का अवबोधात्मक विकास हेतु पाठ्यक्रम में मानवतावादी नैतिकता के उपदेशों को शामिल करना... आदि।

महामना जी का जीवन-दर्शन मानवीय गुणों की झाँकी है, जीवन के प्रति उनका यह दर्शन व्यावहारिक रूप में मानवता-बोध का रूप लेता है। उनके द्वारा स्थापित शैक्षिक पीठ जो ज्ञान गंगोत्री में भारतीय युवाओं व नागरिकों को परिमार्जित करती है, वह उनके मानवीय गुणों का प्रतिफल है। महामना के द्वारा स्थापित शैक्षिक तीर्थ उनके मानवता बोध को परिलक्षित करता है। महामना के जीवन-दर्शन से हम हमेशा मानवता की शिक्षा प्राप्त करते रहेंगे, जो हम सभी को घनघोर अँधेरी तूफानों व संघर्षों से युक्त जीवन को नित्य-नूतन उज्ज्वल व दिव्य प्रकाश से अभिसिंचित करते हुए जीवन-उद्देश्य को ग्रहण करने योग्य बनाएगा।

संदर्भ

लाल, मुकुट बिहारी (1978), 'महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व', काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शर्मा, मणि (1988), 'समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी संभावनाएं', हर प्रसाद भार्गव, आगरा।

ग्रोवर, डा. इंद्रा (2005), 'संसार के महान शिक्षाशास्त्री', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

शर्मा, वाई. (2002), 'द डोक्त्रिनेस आफ द ग्रेट इंडियन एजुकेटेर्स', कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

त्रिपाठी, यू.डी. (2007), 'ए शॉर्ट बायोग्राफी महामना मालवीय', महामना मालवीय फाउंडेशन, वाराणसी।

देवराज (1964), 'विश्व के सन्त – महापुरुष', काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

तिवारी, उमेश दत्त (1988), 'भारत-भूषण महामना पं. मदन मोहन मालवीय', काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सोमस्कंदन, एस. (2010), 'महामना मालवीयजी और उनकी अमर कृति', पयस्वती प्रकाशन, वाराणसी।

प्रज्ञा (2010-11), महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक, अंक-56, भाग-2, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सिंह, अजय कुमार, सिंह, विनोद कुमार, सिंह, सुनीता (2013), 'महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का शिक्षा एवं जीवन बोध'; सिंह, आर.पी. शुक्ला, आर.पी. आदि (सं.), '150 ईयरस् आफ महामना' सर्विस टू ह्यूमैनिटी', भारती पब्लिकेशंस, दिल्ली।